आञ्जनेय



लेखक

डॉ० रामजी लाल दीक्षित

एम. ए., पी एच. डी.



प्रकाशक

सिया प्रकाशन

विक्रमपुर रोड, वाह् आगरा

प्रथम संस्करण :

वर्ष : २००० ई०

लेखक :

डॉ० रामजी लाल दीक्षित

प्रकाशक :

सिया प्रकाशन

विक्रम रोड – वाह

मुद्रक : समता प्रिन्टिग प्रेस,
104/435, पी० रोड, कानपुर

मूल्य : १२५ रु०

सर्ग सूची

o—⁀o—

अपनी बात

पौराणिकी भारत की आत्मा है। इसका समस्त वाङ्मय भारत का स्पन्दन है। पुराणों में वर्णित आख्यानों, उपाख्यानों, आख्यायिकाओं आदि के रूप में जिन ज्वलंत और सर्वकालीन एक रस रहने वाले, अपने उदात्त व्यवहारों से धर्म संस्कृति और राष्ट्रीयता के प्रति समर्पित होकर स्वयं धर्म संस्कृति और राष्ट्र बन कर प्रति युग में सदाबहार सम खिलने और खिलाने वाले पात्रों के चरित्रांकन में लिखी गई, उनका सर्वकाल में मूल्यांकन करना पिष्ट पेषण नहीं, प्रत्युत अति आवश्यक है। जिससे इस भटके मानव समाज को ऐसे मार्ग की दिशा मिल सके जिसके सुमधुर फल अनंतगामी हों। उन्हीं आख्यानीय पात्रों में से एक चरित्र मारुत नन्दन हनुमान हैं।

यह वह सर्वकालिक देदीप्यमान एवं उन्नायक चरित्र है जिसकी आवश्यकता प्रत्येक युग में विशेषतः ऐसे युग में जहां भारतीय जनमानस आधुनिकता के आवरण में अपना स्वत्व भूलने को विवश हो गया हो, जहां अर्थोपार्जन की आवश्यकताओं ने समस्त नैतिक मर्यादाओं को ध्वस्त कर दिया हो, जहां लोलुप व्यापारियों के हाथों में सोई हुई राजनीति के व्यभिचार ने

मानव समाज के एक धरातलीय सूत्रों को छिन्न-भिन्न कर दिया गया हो; होती हैं। ऐसे विषम समय में इन महान चरित्रों के चिंतन और तद्वत विचार समता का और एक सूत्रता का समाधान देते हैं। जो मानव समाज की पीठिका को सुदृढ़ करते हैं।

आध्यात्मिक एवं भौतिक उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करना, सुख शान्ति और आर्थिक समृद्धि के स्वतंत्रतापूर्वक समाधान खोजना एवं चारित्रिक दृढ़ता और मानवीय संबंधों को मूल्यांकित करने वाले विचारों व्यवहारों को गत्यात्मक रूप से प्रतिष्ठित करने की शिक्षात्मक प्रणाली जब व्यष्टि से समष्टि की ओर बढ़ती है, तब देश समृद्ध होता है। भारतीय संस्कृति और धर्म के मूल में यही प्रेरणा कार्य कर रही है। साथ ही भारतीय पौराणिकी में प्रयुक्त चरित्रों के मूल में भी यही भावना कार्य कर रही है। इस दृष्टि से हनुमान शरीरी आवतारिक पात्र होते हुये भी एक विचार है। एक भावना है। यह उस परम विराट की अंतरंग शक्ति का मूर्त रूप है जो उसकी सौन्दर्यमयी सृजन की परिधि से बाहर निकली हुई विकृतियों को कभी क्रूरता और कठोरता से तो कभी सहृदयता से ठोक पीट कर उसी परिधि में समाहित कर ऊर्ध्वगामी बनाने की प्रेरणा देती है।

हनुमान भारत के राष्ट्रीय चरित्र और अनुशासन का नाम है। हनुमान किसी देश और उसकी जाति की उस विकसनशील और क्रमिक परम्परा का नाम है जो उसके धर्म एवं संस्कृति को

अक्षुण्ण बनाये रखती है । हनुमान उस व्रत, साधना, तप और कर्मशील जीवटता का नाम है, जो आगत युवा पीढ़ी को संयमवत शिक्षित कर राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करते है ।

आदि कवि वाल्मीकि ने राम को जहां "रामो विग्रहवान धर्म" कह कर अभिषक्त किया है, वही हनुमान उस विग्रहवान धर्म की साक्षात परिभाषा और व्याख्या हैं । इसलिये "तुम्हारा विग्रह परम स्वरूप, धर्म की परिभाषा है पीन" कहा गया है । किन्तु यह भारत का वह सार्वभौम धर्म है, जिसकी परिभाषा और व्याख्या में सृष्टि की समग्रता समा जाती है । यह वह वर्तमान युग का परिभाषित धर्म नहीं जो किन्हीं आयातित संस्कृतियों के दुराचारी चंगुल मे फंस कर फिर कट कर एकांगी और विकृत कर दिया गया हो अथवा जिसकी विशदता को एक छोटी सी मंजूषा में ठूंस दिया गया हो । और उसकी अनाम अनंतता को नामित चारदीवारी में बन्द कर दिया गया है । उस की सनातनताही उस की अनुगामिनी बन गई है । एक वर्ग अब उसका अनुयायी कहा जाने लगा वह वर्ग भी इस नामित परिधान में अपनें को सीमित करने का अभ्यासी भी हो गया ।

बस यही आज के भारत के साथ विडम्बना है कि वह अपना स्वत्व भूलकर दुराचारी संस्कृतियों के मद में चूर होता जा रहा है । जैसे कोई मद्यपी समस्त मर्यादायें तोड़कर अनर्गल प्रदर्शन कर रहा हो । परन्तु जब तक यह नशा उतरता है तब तक बहुत कुछ उपयुक्त समय निकल जाता है । यही दशा भारत के भावी

कर्ण धार से संज्ञित वर्तमान युवा पीढ़ी की है, जिसकी समस्त ऐजूकेशन (शिक्षा) "भयउ यथा अहि दूध पियाये" की भांति हो गयी है। यथा बन्दर के हाथ छुराधार के समान अपना ही पारिवारिक, सामाजिक, जातीय और देशीय अंग काटने में गौरव समझने लगा है। अतः इस विडम्बना भरे युग में धर्म और उसकी व्यापकता को सुरक्षित बनाये रखने में कवि काव्य के माध्यम से कोई तो उद्योग करने का अधिकारी हो सकता है। यही अधिकार लेकर इस काव्य का षष्ठ सर्ग लिखा गया है। इसीलिए इसका उत्तरदायी कवि स्वयं ही हैं। क्योंकि यह स्वतंत्र सर्ग होते हुये भी एक क्रमिक सोपान बनाया है। इसी से काव्य नायक हनुमान की धर्मिता, समग्रता और अनंतता स्पस्ट होती है।

सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में हनुमान का चरित्र राम के सम्पूर्ण जीवन चरित्र में गुम्फित मिलता है। साथ ही राम का जोवन क्षेत्र जिन-जिन सीमाओं को जितनो विशालता के साथ स्पर्श करता है वहां वहां हनुमान किसी न किसी रूप में प्रस्तुत हुये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जिन धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और पारिवारिक मर्यादाओं की राष्ट्रीय स्तर पर सुदृढ़ और दूरगामी स्थापना केलिए राम का अवतरण होता है तो उन्हीं का व्यवहार करने तथा तदनुरूप जीवन शैली बनाने में हनुमान की भूमिका सदैव जल चन्दन सम एकाकार मिलती है। साथ ही राम के अति दुष्कर कार्यों को केवल हनुमान ही सरलता पूर्वक करते हैं। "त्वरित संचालित करते आप राम का काम विश्व का काम"। इसलिये राम हनुमान के कार्यों से इतने संतुष्ट हैं कि वह उनकी प्रशंसा करते नहीं थकते।

राम यदि धर्म हैं तो हनुमान उसकी व्याख्या हैं। राम यदि संस्कृति हैं तो हनुमान उसकी व्यवस्था हैं। राम यदि राष्ट्र हैं तो हनुमान उसकी नीतियाँ हैं। इसी प्रकार राम शासन हैं तो हनुमान उस शासन के श्रेष्ठ, सत्य निष्ठ, निर्विकारी और कुशल कर्मचारी हैं। राम रूपी शासन के वह कर्त्तव्यनिष्ठ भृत्य हैं तभी तो वह कहते हैं कि "राम काज कीन्हे बिना मोहि कहाँ विश्राम"। अध्यात्म रामायण में हनुमान की इसी कर्तव्यनिष्ठा की प्रशंसा राम जिन शब्दों में कर रहे हैं, वह वर्तमान समय के तथा कथित लोक तंत्र के शासकों को एक सन्देश है :—

भृत्य कार्यं हनुमत कृता सर्वमविशेषतः। सुग्रीवस्ये दृशो लोके न भूतो न भविष्यति"। इससे बढ़कर एक शासकीय कर्मचारी का और क्या सम्मान होगा। आज का शासकीय कर्मचारी शासन के थोड़े से कार्य करने पर यात्रा भत्ते के मँहगाई भत्ते के कितने विशाल बिल प्रस्तुत कर राजकीय कोष का दोहन करता है। जबकि राम हनुमान की कर्तव्यनिष्ठा पर इतने ऋणी हैं कि कितने ही राजकोष लुटा देने पर भी वह उपकार नहीं चुका पा रहे हैं।

हनुमंस्ते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम्।
उपकारं न पश्यामि तब प्रत्युप कारिणः॥

अतः ऐसे संक्रमण काल में जहाँ भारत की वर्तमान युवा पीढ़ी अपने कर्तव्यों के प्रति उदासीन ही नहीं अपितु विश्वास

घाती बन कर बैठ गई हो तो वहाँ ऐसे चरित्रों से प्रेरणा लेकर भटके भारत को पुनः रास्ते पर लाने के लिये काव्य द्वारा स्मरण करना आवश्यक ही नहीं वांछनीय भी है।

काव्य के अंत में प्रस्तुत उपसंहार का नवीन और मौलिक कल्पना प्रसूत कथानक वर्तमान युग की ज्वलंत समस्या की दाहकता में तापित भारतीय समाज की उस अतीन पीढ़ी को इंगित कर लिखा गया है, जिसका दर्द वह भुगत रहा है। कोई भी आख्यान, उपाख्यान, कथा, कहानी कितनी सत्य है अथवा असत्य है। कोई घटना घटित हुई अथवा नहीं। प्रश्न इसका नहीं। अपितु उसके अन्दर निहित उस तत्व को देखना है जिसके लिये वह लिखा गया। घटना की संभाव्यता अथवा असंभाव्यता पर ही यदि हम रुक कर कहानी को नकार देंगे तो फिर हम आचार्य विष्णु शर्मा के पंचतंत्र की और गुणाढ्य की वृहत्कथा की सभी कहानियाँ जो पक्षियों तथा जानवरों को मानवीय व्यवहारों और भाषा में बोलते हुये प्रदर्शित की गई, वे सभी अघटित हैं और असत्य हैं। क्योंकि क्या पक्षी या जानवर मानवीय व्यवहार और भाषा का कहीं प्रयोग कर सकते हैं। किन्तु उनके अन्दर समाहित तत्व मनुष्य के लिये प्रेरणास्रोत अवश्य रहा है। उन्हीं कहानियों के नात्विक प्रेरणास्रोत से राजा के चारों मूर्ख पुत्र विद्वान अवश्य बन गये।

उपसंहार की घटना में प्रस्तुत काव्य के प्रमुख नायक श्री हनुमान जी—रावण के पितामह और ब्रह्मा के मानस पुत्र परम

तपस्वी पुलस्त्य से प्रश्न करते हैं कि इतने तपस्वी, धर्मपरायण सृष्टि के त्रिकाल दर्शी और ब्रह्मर्षि होकर भी आपके कुल में ऐसा पुत्र क्यों पैदा हुआ जो आपके वंश का विनाशक हुआ। पुलस्त्य इसका उत्तर स्वयं न देकर अपने पिता ब्रह्मा जी से दिलवाते हैं। ब्रह्मा जी का यही उत्तर ही तो आधुनिक पीढ़ी की उच्छृंखलता है। और वही समाधान भी है। ब्रह्मा जी का उत्तर है :-

महर्षि कश्यप की दो पत्नियाँ है। प्रथम अदिति है जो सुशीलता, लज्जा और नारीत्व के सभी गुणों से सम्पन्न हैं। वह देश, काल, अवसर, परिस्थिति और पति की मनोदशा को भी ध्यान में रख केवल सृष्टिक्रम का विस्तार करने के लिये गर्भ धारण करती हैं। तब उसके गर्भ से धर्मशील देवताओं की सृष्टि होती है। उसके सभी पुत्र आदितेय नाम से पुकारे जाते हैं, जो सदैव इस भारत भूमि को स्वर्ग बनाने की चेष्टा में सतत प्रयत्न-शील रहते देखे जाते हैं। उसके सभी पुत्र धर्म, विज्ञान और राजनीति का समन्वित रूप लेकर विश्व का सम्वर्द्धन करते देखे जाते हैं।

इसके विपरीत कश्यप की दूसरी पत्नी दिति है, जो कि दुश्शील हैं और अनवसर पर पति की मनोदशा का ध्यान न रख कर ईर्ष्या भाव से केवल शारीरिक तृप्ति के लिए पति को संभोग के लिये उकसाती हैं। तथा अपवित्र अवस्था में गर्भ धारण

करने का परिणाम यह होता है कि उसके दैत्य नाम से पुकारे गये सभी पुत्र आर्य संस्कृति के विनाश का कारण बन कर स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं।

यही बात पुलस्त्य पुत्र विश्रवा के साथ हुई। विश्रवा के भी दो पत्नियाँ हैं। प्रथम पत्नी महर्षि भारद्वाज की पुत्री गौतमी है। गौतमी अदिति की भाँति पति परायणा है। सुशील है। और सेवा धर्म से श्रेष्ठ अवसर पर गर्भ धारण करती है। जिसका परिणाम यह होता हैं कि उसके गर्भ से धन का देवता अथवा धनाधिपति कुबेर का जन्म होता है। वह सभी देवों में में पूज्य हैं। तथा राष्ट्रीय अभिवृद्धि हेतु धन का अनुदान करता है।

इसके विपरीत राक्षस कुल में उत्पन्न सुमाली की पुत्री केकसी स्वेच्छा चारिणी हैं। अपने पिता के साथ भ्रमण पर निकली केकसी विश्रवा के रूप सौष्ठव पर सम्मोहित होकर उनसे विवाह का प्रस्ताव रखती है। अपने पितामह ब्रह्मा के कथनानुसार वह गांधर्व विवाह कर अनवसर सम्भोग को प्रेरित कर गर्भ धारण करती है। जिसका परिणाम रावण का जन्म होता है। अपने स्वभाव वश वह शारीरिक तृप्ति के लिये हठात् विश्रवा को उकसाती है। और गर्भ धारण करती है तो कुंभकर्ण का जन्म होता है। और एक बार योग्य अवसर पर विश्रवा

स्वयं गर्भ धारण कराने का उपक्रम करते हैं। तब धर्मवान बिभीषण का जन्म होता है। इसे विडंबना ही कहा जायेगा कि केकसी रावण और कुंभकर्ण को मातृवत प्यार करती है। और विभीषण से विद्रोह करती हैं।

रावण विद्वान है। शिव भक्त है, किन्तु विकट महत्वाकांक्षी होने के कारण वह किसी के अस्तित्व को स्वीकार नही करना चाहता इसके लिये वह अपने पितामह, पिना, अग्रज कुबेर, अनुज विभीषण आदि सभी से विद्रोह करता है। उन्हें अपमानित भी करता है। इस दृष्टि से यदि देखा जाये तो वर्तमान पीढ़ी में और रावण के मन्तव्यों में कोई मौलिक भेद नहीं हैं। आज परिवार टूट गये। पितामहों, वृद्ध माता-पिताओं की कोई कीमत नहीं रह गई। वे इस सीमा तक इस पीढ़ी द्वारा उपेक्षित है कि उन्हें अपना शेष जीवन वृद्धाश्रमों में व्यतीत करने को विवश होना पड़ रहा है। अथवा अपने ही पुत्रों पौत्रों द्वारा हत्या का शिकार होना पड़ रहा है। इसका कारण वर्तमान युग की दितियों और केकसियों जैसी नारियों द्वारा शारीरिक कामना, वासना के द्वारा मिटाई गई भूख से अनवसर गर्भ धारण कर पैदा किये गये पुत्रों का रावण जैसा विद्रोह ही तो है। यही कारण है कि रावण जैसी संततियों द्वारा भारत कराह रहा है। उसकी संस्कृति नष्ट होती चली जा रही है। इस कार्य में उसको कुछ दुराचारो, भोगवादी और आतताई संस्कृतियों का सहयोग प्राप्त हो रहा है। धर्म के नाम पर वितंडावाद खड़ा करने वाली

संस्कृतियाँ भारत को विखंडित करने पर तुली हुई हैं। सर्वत्र मानवता कराह रही है। शासन का भृत्य वर्ग भ्रष्टाचार में लिप्त होकर धन के पीछे देश को बेच देने के अवसर की तलाश में बैठा है। अथवा झूठी प्रशंसाओं द्वारा सत्य की हत्या कर देना चाहता है। वहाँ हनुमान की राम भक्ति या राष्ट्र भक्ति स्मरणीय है।

प्रस्तुत काव्य के प्रकाशन मे मैं श्री जय प्रकाश जी शुक्ला, दबौली, कानपुर का उपकृत हूं जिनके अथक परिश्रम से पुस्तक इस रूप तक पहुंची साथ ही श्री हरिशंकर निगम जी को भी मैं कृतज्ञता पूर्ण स्मरण करना नहीं भूलूंगा जिनके सुन्दर और सराहनीय प्रयास ने इसे पुस्तकाकार बनाया।

सभी विज्ञ पाठकों को विनम्रता पूर्वक क्षमा मांगते हुए यह पुस्तक सौंप रहा हूं कि इसमें प्रशंसा के प्रसंग उनके हैं और समस्त भूले मेरी अपनी हैं।

धन्यवाद।

डा० रामजी लाल दीक्षित

प्रार्थना

जय शारदे मति वारिधे !
जड़ता तमिस्र निवार दे

हे मराल वाहिनि मान दे
कोई एक दृष्टि निहार दे ।जय०।

पयश्वेत पद्मासीन शतदल
नयन में करुणा है अविरल

उर तंत्रियां झनकार दे
कोई एक गीत सँवार दे ।जय०।

विधि आदितेय महेश वंदित
वरद कर कवि मुखर पंडित

वाणीश्वरी बागीश्वरी
जय भारती जयकार दे ।जय०।

हे भद्र भावोद्भाविनी मां
काव्य स्रोत पयस्विनी मां

उर अजिर आज पखार दे
पद भ्रमर रम्य विचार दे ।जय०।

अर्चन

जीवन को केन्द्र मान
सत्य न्याय तप का चाप
लेकर बनाया वृत
ब्रह्मचर्य माप दण्ड

असम्भव में सम्भव का
भवितव्य गढ़ने हेतु
अग्नि की परीक्षा दे
स्वर्ण सा तपाया गात

प्रज्ज्वलित दीप शिखा सी ज्योति
वेधती विषाद दैन्य
मोह जड़ता तमिस्त्र
मानव के उर की
आता जो परिवृत में
मूर्तिमान !
दीप्तिवान !
काव्य हेतु भगवान
वायु पुत्र को प्रणाम

पूर्ण गात जीवन के मूल्यों की सूची है
दर्श मात्र अंधकार में दिग्दर्शक है
शम दम तपस्या क्षमा का जो मूर्त्तरूप

जीवन जगत के प्रमाण
सत्य न्याय धर्म प्राण
श्वास श्वास निस्सृत है
रामचरित कीर्ति गान

ज्ञान सिंधु में से
एक विन्दु का ही पान मात्र
बनता स्वयं में काव्य
देता है गौरव सहज कवि होने का

नाम मात्र छेड़ देता
अंतर की झंकृति को
भय हीन हुंकृति को
नीति मयी संस्कृति को

प्राण मयी संस्कृत के
राममय उपवन के
सहस्र दल कमल के
भूषित भ्रमर हो देव

परिमल का अणु मात्र
देता कला को रूप विद्वत्समाज में
राम भक्त भूषण के
कपि कुल शिरोमणि के

पाद पद्मों में
प्रणाम
नित नित
शत शत
प्रणाम ! प्रणाम

भीषण परिस्थिति में
शोषित का साथ दिया
धर्मनीति न्यायनीति
राज नीति बोल कर
अन्यायी, दुराचारी
दुराग्रहों से लड़ने का
सम्बल महान दिया
स्वाधिकार लेने का

सौम्यशीलता निधान
ज्ञान सिंधु महा प्राण
कपि कुल नेता के
महाकाव्य प्रणेता के
पादाम्बुजों में
गंधहीन पुष्पों की
काव्य रूप माला यह
अर्चित है
समर्पित है

धुंधला स्मृति पथ निर्मित
आशा पुष्पों से सिंचित
वर्ण छंदों के बिछे पांवड़े विमल
सुर पुर से उर पुर में आने को
देता आमंत्रण
यह अकिंचन

प्रति क्षण प्रति पल तिल तिल
कर रहा समर्पित गात पात
जिसका साहाय्य मात्र
करता विपन्नता विनाश
देता अदम्य उत्साह
अप्रमेय पौरुष
अन्यायियों से जूझने को
क्रिया शील रहने को
गतिवान बनने को

मंत्र हीन क्रिया हीन
ज्ञान हीन सर्व दीन की
अर्चना स्वीकार लो
और प्रत्युत्स्वरूप
बैठो जनमानस में
अनीतियों को दूर करो

दुष्प्रवृत्तियां हरो
मानव धर्मोपदेश दे
बने यह समाज पूर्ण
नीतिवान, न्यायवान
गूंज उठे प्रेम नाद
स्वार्थ हीन सौहार्द
हृदय की कलुषतायें
आंतरिक विषमतायें
दूर हों
गूंजे फिर एक बार
जय आञ्जनेय महोच्चार

—०•—

समर्पण

अंजनी सपूत रामदूत भक्त अग्रगण्य
अप्रमेय धाम शुद्ध बुद्धिबल ज्ञान के
स्वर्ण शैल राट तुल्य कमनीय बपु कांति
रोम-रोम रश्मियां है भानु ज्यों विहान के
वीर अक्षनाशक विनाशक तमी चरादि
वैनतेय वेगवान मर्दनाभिमान के
ऋद्धिसिद्धि दाता पूज्यदेव वंद्य बज्र अंग
आप्त काम पूर्ण लाभ नाम हनुमान के

आजन्म ब्रह्मचर्येण नैष्ठिक
वातात्मज, मारुति, रुद्र रूप
ऋक् सामयजुर्वेदाङ्ग पूर्ण,
तत्वज्ञ, मनस्वी, वाक् भूप,

व्याकरण शास्त्र पंडित, अजेय,
वल विक्रम दृढ, पौरुष अपार
सम्भाषण पटु, गम्भीर विप्र
अभिजात, युग्म संस्कृति अगार,

औदार्य कृपा वात्सल्य रूप
दक्षिण कर साधु भक्त तारक
गर्जन भूकंप गर्भ स्रावी
उत्तर कर निशिचर वध कारक

मर्मज्ञ काव्य संगीत प्रवर
रामायण रत मति विगत काम
परिपूर्ण अश्रु लोचन सदैव
दर्शन अभिलाषित प्रभु ललाम

शरणागत पाता अभय दान
मनवांछित तुमसे वरद ज्येष्ठ
करुणा सागर लीला विग्रह्
कमनीय कांति वपु स्वर्ण श्रेष्ठ

विद्या विद् वेद मर्म दर्शी
भगवान अंशुमाली गुरुवर–
भवदीय ज्ञान, देवेन्द्र प्रभृति
हर्षित हो करते वर्षण वर

अवगाहन गति पवमान कृपा
वर देकर गुरुपति हो प्रसन्न
पाकर अभीष्ट कमनीय गेह
घर स्वयं मूर्तिवत अग्रगण्य

सब देव स्वयं संस्थापित थे
निज अंश कला से मूर्तिवंत
अभिलषित मिलें जीवन कृतार्थ
हर्षित जय ध्वनि भूदिगंत

आगार कृपा, सर्वज्ञ, सौम्य
नीति शास्त्र विज्ञान विशारद
आञ्जनेय सीता दुख नाशक
राम रसायन कंचन पारद

रामकाज उल्लसित त्वरित गति
कठिन अकर्म्य या कि अति दुस्तर
विधि प्रपंच आभूमि व्योम तक
सम्भव निमिष मात्र में सत्वर

भक्त कृपालु दयालु दीन हित
कृपा दृष्टि वर्षण में तत्पर
ऋणी राम सीता त्रिदेव जग
नाम विश्व उपकारक कपिवर

राम नाम गुण भ्रमर वाटिका
पाद पद्म रज चिर अभिलाषी
वाष्प वारि परिपूर्ण नेत्र नित
राम अयन आनन्द निवासी

जानकी शोक सागर निमग्न
लघु तरणी ज्यों पा जल अथाह
उल्लंघ्य सिंधु द्वय गर्जितोर्मि
युग सतत निरत आंसू प्रवाह

राक्षस हंता अति रौद्र रूप
अति सौम्य सिद्ध पद शरणागत
लंका ददाह कर भस्मभूत
मद चूर्ण दशानन प्रमदा रत

मारुत नन्दन मन गति विजयी
नभगेश दर्प कर त्वरित खर्व
हरिवाहन से हरि भक्त पूज्य
अप्रतिहत गति भू व्योम सर्व

ऊर्जस्वित तन में स्फीत शिरा
बल वीर्य्य युक्त पौरुष अपार
मांसल परिपुष्ट वज्र सम तन
गिरि श्रृंग विदारक कर प्रहार

चन्द्रमौलि वृषकेतु रुद्ररूप एकादश
प्रभु सेवा हेतु लीला वपु धार लेते हो
राम गुण गान रत सुयश बढ़ाने हेतु
कल्प कल्प प्रति अवतार यही लेते हो
रामायण वाटिका के भ्रमर हो एकमेव
मग्न सुधासिंधु परिपूर्ण रस लेते हो
पार्थके सखा हो भीमके हो बड़े बधुप्रिय
सुखदाता भक्तके हो भार ओढ़ लेते हो

—००—

प्रथम सर्ग

केलास शिखर अति रम्य प्रान्त
परमेश्वर वामा सहित शांत
कमलासनस्थ शिव मन प्रशांत
विधुभूषण युतकमनीय कांत

वपु गौर वर्ण कपूर सदृशे
सरसिज लोचन अरुणाभ युक्त
विष वर्ण सुशोभित कम्बु ग्रीव
चिंतित अधीर योगादि मुक्त

क्षण रोमांचित क्षण सिहरा तन
रतनारे लोचन अश्रु पूर्ण
आनन्द सिंधु आकंठ मग्न
प्रभु ध्यान लीन अति हर्ष पूर्ण

विचलित संस्थित दुख हर्ष प्रभृति
थे विविध भाव बनते मिटते
ज्यों उलझी विशद समस्या के
उपचार तन्तु रुकते चलते

अथवा विशाल नद भँवर पूर्ण
तरते तरते हो गया श्रमित
सुख पाता नर कर प्राप्त थाह
भावोर्मि उठे हर वदन अमित

दुर्गा जननी जग मूल प्रकृति
भयभीत, देख शिव विविध रंग
सर्वेश्वर क्रुद्ध या कि प्रशमित
कौतूहल जागृत अंतरंग

प्रभु आनन सृष्ट कुटिल रेखा
अंतस उद्वेग प्रकट करतीं
क्षण भ्रू विलास लख विश्ववंद्य
आसृष्टि प्रलय कारण बनती

अपराध क्षमा अनुनय विशेष
जिज्ञासा उर में जूझ रही
यदि प्रकटनीय कारण मुझ तक
मैं निज स्वभाववश बूझ रही

कारण क्या ? कौन समस्या का
उलझाव विकट आया उर में
शिव कारक सुन्दर समाधान
पाती न मनीषा निज स्वर में

प्रिय बचन सुधा सम श्रवणागत
शिव तन्द्रा क्षण भर हुई भंग
गंभीर धीर मन्द्रस्वर में
बोले सुख कारक रिपु अनंग

कल्याणि ! हृदय अवसाद पूर्ण
निर्णय विहीन मन व्यग्र हुआ
अखिलेश्वर देवेश्वर प्रभु की
सेवा अवसर न करस्थ हुआ

भूभार युक्त राक्षसाक्रांत
लंकेश्वर विश्व विदित भयकर
सुर नर मुनि गौ द्विज धर्म हेतु
निर्गुण प्रभु जन्मे नर होकर

लीला दर्शन हित प्रभु समीप
चिर सेवक, भक्त स्पर्श चरण
आज्ञाचर रह प्रिय कार्य हेतु
आती न युक्ति जो करूँ वरण

नित मृतक जियावन गिरा सुनूं
अति कठिन कार्य सरलीकृत हो
प्रभु पार्षद बन शुभ लाभ मिले
ध्यानस्थ मग्न आनंदित हो

सहसा नभ घर्घर नाद युक्त
सुन पड़ा शिवा थी चकित मौन
शतशम्पा सम हेमाभ ज्योति
देखा, सोचा अवतरित कौन ?

सुर प्रथक-प्रथक करते विनती
भुवनेश, भुजग भूषण शंकर
गिरिजेश, चन्द्र धर, वृषभ नाथ
क्रुद्धित तांडव कर प्रलयंकर

हर, आसुतोष, शिव, मृत्युंजय
वर, वरद, दिगम्बर भूतनाथ
कामारि, रुद्र सरसिज लोचन
नीलाभ कंठ प्रभु विश्वनाथ

अविचल, विभु, भीम, व्याघ्रचर्मी
सर्वाङ्ग सर्व विख्यात प्रवर
सर्वात्म सर्वभावन महान
हरिणाक्ष दिव्य गम्भीर खचर

विनती बहु अर्थ रहस्ययुक्त
सुन सरसिज सम लोचन खोले
योगीद्र धीर गंभीर गिरा
कर सुर समूह इंगित बोले

आगमन हेतु तुम प्रकट कहो
प्रस्तुत करने निज कर्म योग्य
जग उपकारक प्रभु गाथा का
विस्तारण अवसर यथायोग्य

हे नाथ धरा राक्षसाक्रान्त
दुर्दमन घोर अन्याय व्याप्त
अनुशासनहीन लोक जीवन
अतिचार अनैतिक पाप आप्त

अपहृत होती बहु बालायें
अवलाओं के खिच रहे केश
पर धन हर्त्ता शोषक पीड़क
भयभीत प्रजा नहिं शांतिलेश

रावण लंकेश्वर रुद्रभक्त
मृत्युंजय बन करता अनीति
सब कर्म वेद पथ हीन, बाम
प्रतिक्षण फैलाता लोक भीति

ऋषि मुनि जप साधक सिद्ध तपी
सब पर वह आक्रामक वलात्
धन या कि रक्त शोषण प्रतिदिन
निर्द्वन्द्व उगाता कर हठात्

भूशांत लोक संस्थापन हित
अवतरित हुये जग में प्रभुवर
सेवा साहाय्य निरंतर हित
अवतार स्वयं भी लो विभुवर

शिव कल्याणक वर हों प्रसन्न
दो अभयदान शरणागत को
मानवता अतिभयभीत त्रस्त
करिये न विमुख गेहागत को

अभिलषित वस्तु पाकर समुचित
होता दरिद्र मन अति प्रसन्न
शत गुणित सौख्य गिरिजेश हृदय
पीयूष प्राप्त ज्यों मृत विषण्ण

अखिलेश्वर संग भू भार हरण
करने होगा मम अवतारण
आसुरी प्रवृति हत लंकेश्वर
धारूँगा मैं वपु वन चारण

सुर साधु साधु कहते प्रसन्न
जय जय प्रणम्य सिर धार्य सोम
हर महोच्चार ध्वनि दिग्दिगंत
वर्षण प्रसून रत सतत व्योम

कल्याणी, अर्द्धांगिनि, गिरिजा
थी चकित अधिक सुन शिव वाणी
वर अभय प्रथम लंकेश्वर को
अब मृत्यु प्रतिज्ञा क्यों ठानी

परमेश्वर ! यह कैसा विरोध ?
मृत्युंजय हित वह बना भक्त
दशशीश पुष्पवत अर्पित कर
वर पाकर ही कामानुरक्त

क्या शिव विधान होगा न असत
विश्वास रहेगा कौन ठौर
क्या समाधान इस उलझन का
मिलती न कहीं अब शांति और

प्रभु की माया मैं मूल प्रकृति
अव्यक्त अगोचर अगम दृष्टि
सब पर मेरा अनुराग पूर्ण
मम कृपा पात्र रत सतत सृष्टि

शिव शक्ति उपासक लंकेश्वर
मैं उसकी रही पक्षधर ही
दुर्जेय अजेय रहेगा नित
उतरें रण में शशि शेखर ही

रावण आघाती अस्त्रशस्त्र
मैं कर लूंगी सब आत्मसात्
शारंग, पाशुपत काल दण्ड
हरिचक्र बज्र भी हों निपात

रावण पंडित संस्कृत संस्कृति
विज्ञानी फिर अविचल ध्यानी
मर्मज्ञ राज नय शास्त्रों का
ब्राह्मण यज्ञिष्ठ धर्म ज्ञानी

क्षत्रिय जैसा रणनीति कुशल
युद्धोन्मत्त प्रतिभट आगे
निज भुजबल से कैलास उठा
विजयी, सुर कंदर में भागे

यह सुर समाज स्वार्थी कुत्सित
भोगानुरक्त कर सोम पान
कामोत्सव रत यौवन बसन्त
सुन्दरियां नर्त्तनरत अम्लान

सुरभित रहते वातायन गृह
चंचल समीर थककर जाता
सुरबालायें आलिंगन रत
पल भर विश्राम नहीं भाता

कामानुरक्त रत चिर विलास
सुर जाति सशंकित बहुलदम्भ
मानव ऋषि मुनि व्रत भंग हेतु
कपटी भेजे उर्वशी रम्भ

निष्कंटक रखने निज शासन
पर वैभव तप न देख सकते
सूखी हड्डी न सिंह ले ले
सुर श्वान सदृश डरते रहते

सुर भोग हेतु यह प्रलयंकर
ताण्डव लीला हो ईश्वर की
यह भेद न मैं कुछ समझ सकी
वाणी बोले विश्वम्भर की

सुश्रोणि ! न हो चिन्तित किंचित
यह लीला प्रभु लीला धर की
ब्रह्मा, लक्ष्मी पति, मैं सब सुर
आज्ञा में रहते करुणा कर की

आनन्द सहज जग सृष्टि बना
पालन विधिवत करना होगा
नित नव को सत्यापित करने
कल जन्मे को मरना होगा

फिर भी है कुछ कारण विशेष
उस महा शक्ति अवतारण में
होता प्रलयंकारी विनाश
विघटन होता उस कारण में

मर्यादा हत, कर श्रुति विरोध
निर्धर्म बना मानव समाज
सुख शांति प्रेम तज अनुशासन
विघटन पलता सर्वत्र साज

अन्याय, असत्य, अनीति पूर्ण-
-सब कर्म, धरा आक्रान्त भार
हंता शोषक जग उत्पीड़क
दुष्कर्म पनपते दुर्निवार

शाश्वत संस्कृति के ढांचे में
पड़ने लगती लम्बी दरार
हिल जाता महल सनातन का
सत्कर्म दुबकते ज्यों फरार

संस्थापन धर्म सभ्यता का
करने होता प्रभु अवतारण
होता दुष्कर्मक का विनाश
करते सुकृती पथ विस्तारण

कुछ अन्य हेतु बनते पुनश्च
शासक अभिमान पूर्ण बनता
ज्ञानी होकर नर विज्ञानी
हरि सत्ता को विस्मृत करता

जग पालक स्वयं समझने पर
बाधक बनता प्राकृतिक कर्म
अभिमान समूल विनाशन को
हरि का आना अनिवार्य धर्म

जग में हरि के अवतारण का
निश्चित विशेष नहिं न्याय एक
लघु विन्दु-विन्दु बनते प्रमाण
कारण बनते मिलकर अनेक

शासक, पालक रक्षक किंवा
मदचूर हुआ अधिकार गर्व
आकुल निरीह हत धर्म प्रजा-
-हित, करते प्रभु अभिमान खर्व

निर्द्वन्द्व अराजकता हिंसा
शाश्वत विरोध, नित नव प्रयोग
स्वच्छंद अनर्गल शास्त्र विमुख
जीवन शैली बनती कुयोग

नारी स्वातंत्र्य विचारों में
हो निर्वसना भोग्या बलात
विस्मृत करती वह निज स्वरूप
निज मत कल्पित करते हठात्

बहु काम बाद सर्वत्र भोग
व्यवहार दम्भ पाखण्ड धूर्त्त
गुण पिसुन समाद्रत चौर्य कर्म
उच्छृंखलता परिव्याप्त पूर्ण

अवतारण कर विभु सत्कर्मी
जीवन लीला दिखलाते है
अनुकृति करता मानव समाज
विस्थापन विधि सिखलाते हैं



योगी तपसी वा भक्तों के
वचनों को वह पूरा करते
अभिशापित दैत्य विनाशन को
अंशों समेत प्रभु वपु धरते

रावण अभिशप्त शक्ति द्वारा
वन वेदवती तप करती थी
पति रूप मिलें अमिताभ देव
निर्जन व्रत लीना रहती थी

तप व्रत संलग्ना देवी का
सौन्दर्य प्रकाश निखरता था
प्रतिमूर्ति बनी नयनाभिराम
मकरंद सुगंध विकीरित था

रावण पहुँचा उस आश्रम में
विचरण करते मदचूर हुआ
निर्जनता का वरदान समझ
बाला पर कामासक्त हुआ

रुक गया वहाँ कौतूहल वश
हो गया क्षोभ मन में अपार
परिचय पाकर यदि वरण करे
विध गया हृदय शर पंच मार

प्रमदा की सभी क्रियाओं को
कामी निज आमंत्रण जाने
ललचाया फिर सोचा जाकर
कुछ प्रश्न करूं तब पहचाने

तुम कौन ? यहाँ निर्जन प्रदेश
सुकुमारी तन्वङ्गी विमला
अप्सरा किन्नरी सुरबाला
उर्वशी रमा रम्भा सरला ?

मैं रावण लंकेश्वर कहता
तप योग्य नही तुम सी नारी
मेरी भोग्या बन जाओ तुम
कोमलता भी तुमसे हारी

निर्जनता का पाकर प्रसाद
आलिंगन कर कामातुर का
रह कर समीप कर कृपा दृष्टि
सुख भोग उठा तू सुर पुर का

कह कर तन का संस्पर्श किया
कातर स्वर वेदवती बोली
पापी परिपूर्ण दुराचारी
अब मृत्यु शीश पर ही डोली

कुत्सित तेरा अंतर मलीन
नारी से करता बलात्कार
अब इस तन का परित्याग करूं
तू भी दंडित होगा अपार

यह परम अपावन देह त्याग
सीता बन भू पर आऊ मैं
तेरे समीप वंदिनि बनकर
तेरा विनाश बन जाऊं मैं

मैं दुर्गा तेरी इष्ट जननि
जैसी तपस्विनी पर दुराचार
हो मृत्युवशी मम वचन सत्य
वरना फैलेगा अनाचार

दुहिता बनकर मिथिलेश्वर की
श्री राघवेन्द्र को वरण करूं
वन में तू मेरा हरण करे
मैं लंका में रह हनन करूं

अभिशप्त हुआ चल जा हट जा
तू मिट जायेगा कुल समेत
सुन गिरा हृदय परिताप पूर्ण
रावण भू नत होता अचेत

बस वही वचन सत्यापन हित
प्रभु का नर वपु अवतरण हुआ
साहाय्य हेतु सेवक बनकर
रहने का अवसर वरण हुआ

दशशीश समर्पित कर उसने
दश रुद्रों का ही स्तवन किया
एकादशवां अनपूजा शेष
समझा नगण्य अपमान किया

रुद्रावतार धर पूर्ण करूं
में वचन तुम्हारे भी अपने
अवसर की विकल परीक्षा में
शिव प्रभु का नाम लगे जपने

सुन श्रवण पीयूष सम
हर की गिरा प्रामाण्य को
सच्चकित प्रमुदित हुई
वह झुक गईं पद कमल में नाथ के

बोली विनत
नम्रता भवदीय की
संसृति जमी विवुध तरु सम
आपका संसर्ग पाकर
रंक का सब दैन्य
तम दूरस्थ होता
लालसा उर की सभी सम्पूर्ण कर दो
यवनिका सम सर्ग भी सम्पूर्ण होता

—०—

द्वितीय सर्ग

ऋषि प्रवर कुंभज ! मुझे आश्चर्य होता
अंजनी नन्दन समान न वीर भू पर
बुद्धि बल विज्ञान का समवेत संगम
अब न होता दृष्टिगत यह राम वाणी

समर में लंकेश जैसा भट न दारुण
द्वन्द्व में बाली समान न वीर योद्धा
युगल का पौरुष तुलित होकर न पाया–
–साम्य, जो बल आंजनेय प्रहार में था

ऋक्षराज, कपीश की वाणी यथोचित
दे रही उत्साह नित मुझको समर में
वीर गति को प्राप्त हों वानर सभी यदि
राम की होगी विजय हनुमान द्वारा

जगत की सब भ्रष्टतायें भ्रष्टतायें
एक इनके नाम से ही नष्ट होती
मैं ऋणी हूँ जानकी सौमित्र साग्रज
भक्त के आदर्श प्रिय मारुत तनय हैं

कह रहे जैसा यथावत सत्य है वह
यह न इनके हेतु गुरु तर कार्य कुछ भी
जन्म ही इनका हुआ यह मान्यता ले
बुद्धि बल सब प्राप्त इनके नाम से ही

जन्म की गाथा सुनो इनकी निराली
है पुरातन सर्ग में इतिहास इसका
हो अभिज्ञ तथापि मैं बतला रहा हूं
यह अलौकिक भेद है, ऋषि घटज बोले

एक दिन गोलोक में निज शक्ति संयुत
ब्रह्मवर संलग्न थे क्रीड़ा मनोरम
योग माया अवतरित बहुलांश में थी
चल रहा था रास बहु आनंददायी

विपुल वेष स्वरूप में बहु सुन्दरी थी
सप्त नव श्रृंगार युत प्रकटित हुई थी
मध्य में शोभित अखिल प्रभु दिव्य थे
योग माया वाम भाग विराजती थी

देखने क्रीड़ा युगल भुवनेश की तब
लाभ लेने हर अचानक प्रकट होते
योग माया क्रुद्ध थी प्रभु चकित होते
आगमन पर प्रश्न चिन्ह अनेक लगते

भक्त हो तुम आ गये अधिकार तुमको
पुत्रवत अपराध करते क्षम्य हो तुम
वासना किंचित न जागृत थी हृदय में
ब्रह्मचारी तुम सुनिष्ठित और यशधर

इस तरह व्यवधान का परिणाम यह है
मातृवत सेवा तुम्हें करनी पड़ेगी
हरि सहायक बन सदा पादाम्वुजों में
जन्म लोगे कीश बन यह शाप मेरा

यह मुझे स्वीकार्य है अम्बे विधात्री
शाप भी वरदान बन मुझको मिला है
दुख न होगा कीश बन यदि जन्म लूंगा
हर्ष है प्रभु भी मिलेंगे मनुज तन में

भक्ति का सिद्धान्त तव व्यवहार्य होगा
ले यथार्थ स्वरूप जब आदर्श आये
अवतरित हो कल्पना साकार बनकर
रत्नगर्भा नाम सत्यापित धरा का

लोक में गाथा चलेगी चरित पावन
अनुकरण कर मान्यता विधिवत पलेगी
भक्ति ज्ञान विराग के पथ हों प्रकाशित
मनुज को विश्वास हो प्रभु अवतरण का

शर्वला सुर किन्नरो अभिशप्त वाला
शिव तपस्या कर रही अनपत्यता वश
आसुतोष कृपालु से वह मांगती थी
भक्ति बल सम्पन्न तुमसा पुत्र पाऊँ

एवमस्तु विचार तेरा सफल होगा
त्याग कर इस देह का योगादि द्वारा
अंजनी के नाम से विख्यात होगी
केसरी कपि संग पाणिग्रहण होगा

मैं स्वयं जैसा कहाँ शोधन करूंगा
निज सरिस बल वीर्य्य में होगा न जाने
भक्ति पथ का कार्य भी सम्पन्न करने
मैं स्वयँ अवतरित जननी तनय तेरा

अभिलषित मन कामना पूरी हुई है
कठिन व्रत को छोड़ तुम घर को सिधारो
अब विवक्षा को नहीं अवकाश कुछ भी
सत्य है प्रण सत्य है प्रण सत्य है मेरा

नियति का आदेश पा प्रमुदित हुई थी
आ गई थी अंजनी बन जन्म भू पर
सुन्दरी मृदुभाषिणी प्रिय कोमलांगी
वीर वर कपि केसरी की सेविका थी

किन्तु इस संयोग का भवितव्य यह था
बन प्रवासी शैल पर रहने लगे थे
उग्र तप में युगल वर संयोग रत थे
नव अरुण आभा वदन पर राजती थी

इन्ही अंजनि गर्भ अम्बुधि की कृपा से
मणि प्रवाल समान यह अवतीर्ण होते
देव नर कल्याणकारी पथ सृजन कर
अमर रह कल्पान्त तक गुणगान करते

अगम का मिलना सुगम संसार में है
देव भी उतरा धरा पर मनुज द्वारा
प्राप्त के सम्मान की, उपयोग की सत-
पात्रता पाता यहां कोई विरल है

वह सदैव बिराजता है साथ अपने
किन्तु संगति का न कोई भान होता
वह अयोनिज ब्रह्म भी योनज बना है
शक्ति धारक पात्र वह देखे रहा है

वह स्ववश होकर मनुज वश हो गया है
मनु सपूतों ने उसे प्रत्यक्ष देखा
नारियाँ उसकी हुई हैं गर्भधार्या
पर प्रथम वह निज समर्पण देख लेता

कर्म ब्रत संलग्न रहना प्रथम वांछा
नित्य नव प्रभु दर्श की दृढ़ लालसा भी
सेव्य के प्रति दास्यवत अनुराग उर में
और गुण कीर्त्तन श्रवण में अश्रु निर्झर

साधना पथ पर निरंतर अग्रसर हो
योग और समाधि का पाथेय लेकर
ध्यान की निर्जन गुहा में हो अवस्थित
निर्विराम गुहार दे उर में उतारो

स्वानुशासन विधि निषेधादिक अनुज्ञा
पाल कर संस्कार के सोपान पर जो
गमन करते साहसी यात्री निरन्तर
वे पुकारे है गये ब्राह्मण सदा ही

मूल इसका है नहीं अभ्यास केवल
किंतु प्रकृति प्रदत्त गुण होते प्रमुख हैं
कर्म उसका वृत्ति और स्वभाव बनकर
प्रकट होता है तभी वह वर्ण बनता

इस अवस्था में न उनका विश्व रहता
क्षुद्रता की मान्यतायें छूट जाती
लोक यश उनका न कोई मूल्य देता
गाँव कुल वा जाति सब अज्ञात होते

भक्त की यह अर्हता लौकिक प्रथम है
ब्रह्म से अनुराग उसका धर्म पहला
काम जननी वासनायें टिक न पाती
लोक का व्यवहार उनसे मिल न पाता

केसरी अंजनि युगल सत्पात्र पूरे
साधना परिपूर्ण उनकी उर्ध्वगामी
गति अनन्य विरक्त अविरल अश्रु धारा
बर सदृश वनमाल सी उस शोभती थी

नभ गिरा गम्भीर स्वर में उच्चारित हो
साधु-साधु सधन्य तब पूरित मनोरथ
सम्वरण कर तेज का मैं आ रहा हूँ
गर्भ में तेरे, बनूंगा पुत्र अंजनि केसरी का

अमृतमय वाणी श्रवण कर आप्त उर में
दण्डवत वह गिर पड़े प्रभु पद कमल में
नाथ ! वाणी आपकी प्रामाण्य होगी
आत्मगत विश्वास दृढ़ उठता निरंतर

मैं निजत्व न देखता उसमें यथोचित
यह कृपालु ! दयालुता बस आपकी है
कर रहा संकोच मैं निज कृपणता वश
कल्पतरु से मांगने में अटकता है ज्यों दरिद्री

वायु आराधन हुआ तब से निरंतर
नित्य आवाहन हवन विनियोग द्वारा
मंत्र, जाप पुरश्चरण, सब पूर्ण पाकर
तृप्त हो मारुत चले प्रमुदित हृदय से

नित्य नियमित कर्म से अवकाश पाकर
कंद फल लेने गये कपि केसरी थे
अंजनी उन्मुक्त केशी गिरि शिखर पर
लस रही घन बीच जैसे अरुण आभा

अंस अवलम्वित कुटिल अलकें विखरती
वदन पर झुकतीं हवा का योग पाकर
मेघ मंडल श्याम में ज्यों तड़ित चमकी
मेरु आभा नील मणियों बीच किवा

शिखर का सौन्दर्य जैसे मूर्तिवत हो
या कि विधि की कुशलता की बानगी है
बिखरता सौन्दर्य देखे जिस दिशा में
विश्व का आश्चर्य बनकर खिल रहा था

देख अप्रतिम छवि थकित मारुत हुये हैं
एक क्षण विस्मित, चकित विचलित ठगे से
रह गये तन में पुलक कम्पन हुआ सा
बिंध गये सब मर्म उनके असमसर से

तड़ित सा झटका लगा रुकते विजक कर
दृष्टि अपलक अधर थर थर मौन वाणी
लड़खड़ाती कह रही अस्फुट स्वरों में
काम का प्रस्ताव आया भाव यह था

सम्हल कर सुस्थिर हुये प्रमुदित हुये फिर
रूप के माधुर्य रस की लालसा में
खींचली अपनी भुजायें शिखर पर ही
बन तरल बहने लगे तन परस करने

कौन है ? मेरी अलक से खेलता जो
मलय तन का परस कर उर में समाता
खींचता अंचल मेरा बरजोर कोई
कौन हो ? तुम प्रकट होओ विनय करती

वायु हूं मैं देवि मेरे नाम बहुधा
पवन मारुत वात अनिल समीर जैसे
या प्रभंजन नाम मेरा है, भयंकर
इस समय मैं ब्यारि बन तन छू रहा हूं

देवि ! मैं आसक्त हूं इस छवि सुधा पर
मन हुआ चंचल न उसको रोक पाता
काम पीड़ा बिद्ध रग रग हो रहा है
तरल अब साकार होकर प्रकट बोला

सृष्टि के चर अचर में आवास मेरा
प्राण का संचार तन में कर रहा हूं
विश्व मेरी ही कृपा से जी रहा है
योग तप रत देव मुनियों का अशन हूं

जो रुके संचार मेरा तो जगत सब
आर्त्त होकर विनय वह करता हमारी
बंद कर लूं जो अगर व्यापार अपना
सुर तड़प जाते मनुज की बात क्या है ?

शम्भु का हूं दूत उनका परम प्रिय हूं
संग रहते हैं पवन उनचास मेरे
विश्व का उपकार होगा आज तुमसे
बस इसी भवितव्य हित प्रेषित हुआ हूं

काम पीड़ा में इधर आकण्ठ डूबा
विस्खलन होता निरंतर जा रहा है
सजग हो निज तेज को प्रत्यक्ष कर लो
गर्भ का आधान तुममें कर रहा हूं

यह मनोरथ व्यर्थ ही टाला न जाये
लोक नर जैसो नहीं सामान्य पीड़ा
यह न अधकचरी अकेली वासना है
क्षणिक सुख हित भोग तन का भी न किंवा

शुक्र का सम्पूर्ण तेज उतारता हूं
बुद्धि बल युत ज्ञान का संगम अलौकिक
देव का आदेश है जो सेव्य तेरा
यह कृपा उसकी महान उदारता है

श्रवण कर मारुत गिरा अंजनि सिमटती
लाज अव—गुण्ठन वदन पर उतर आया
झुक गई पलकें अरुणिमा झलक आई
पुलक कर अवला सुलभ वाणी उचारी

देव ! यह वरदान का क्रम कौन सा है ?
क्या न इससे धर्म पातिव्रत घटेगा ?
जोषिता की सत्यता खर्वित न होगी ?
भाग्य क्या मेरा न खण्डित हो रहा है ?

अवल अवला के समीप न और कुछ भी
सत्यता दृढ़ता अडिगता से अलंकृत
वल्लरी बन झूलती विश्वास तरु पर
बन अनाश्रित, हेतु बनती वासना का

संघटन का हेतु मैं सब जानती हूं
हृदय फिर भी मौम जैसा द्रवित होता
बिगड़ता नारीत्व नर की वासना से
मैं न पद दलिता रहूंगी यह वचन दो

देव की वांछा जहां पर उतरती है
लोक निर्मित मान्यतायें विखर जाती
कौन बाधक बन सके भवितव्य में फिर
शक्ति आती जगत में बस इस तरह से

तब वहां मेरा न तेरा विश्व रहता
एक सत्ता में सभी होते तिरोहित
अप्रत्याशित संघटन हो युगल का जब
तब समझ लो देव की वांछा उतरती

देवि पतिव्रत रत रहेंगी सर्वदा ही
व्रत तपस्या योग भी अक्षुण्ण होगा
पल्लवित होगा सुमन जो गर्भ धरणी
यश सुगंध विकीर्ण होगी जगत व्यापी

शुक्र शिव का इसलिये यह सुवन शंकर
कर रहा आधान में मारुत तनय सो
अंजनी का आंजनेय सपूत बनकर
केसरी नंदन जगत में अमर होगा

युगल विस्मित थे परम मोहित हुये थे
इन्द्र जाल समान प्रस्तर मूर्ति बनकर
निष्पलक थे, विश्व उनका खो गया था
थी क्रियारत अबतरण में परम सत्ता

प्रेम अम्बुधि में उमगते जा रहे थे
खो गया मन भूलकर निज गति सभी ही
नयन जब खोले वहां कुछ भी न देखा
पार्श्व में प्रमुदित खड़े पति केसरी थे

शुभा तुम शुभदा अनिन्दित धन्य भागा
मैं हुआ पुलकित तुम्हारी ध्यान गति पर
देव का जो भी मिला स्वीकार कर लो
देखता था प्रेरणा उसकी खड़ा हो

खोल दो उर के कपाट अबाध कर लो
फिर उतरने दो जिधर से आ रहा है
पूर्ण काम निरीह अज अव्यक्त फिर भी
कार्य हित बस कारणों की खोज करता

देवि ! तुम नारी शिरोमणि बन गई हो
तव सुहाग अखंड नभ में चिर प्रकाशित
पाति व्रत्य अपूर्व हो गाथा चलेगी
यह चरित होगा अमर इतिहास में भी

भगवती सम लोक गाथा बन चलेगी
पूज्य और असीम पूर्ण अनिन्दिता हो
बज्र तन पोषक पयस्विनि ! दुग्ध तेरा
पान कर त्रैलोक का विजयी बनेगा

मनुज तन की लालसा का हेतु जग में
एक है पर हेतु हित जीवन समर्पित
कीर्ति फैले चंद्रिका सी धवल शांता
राहु बन कोई विकार न ग्रस सकेगा

लालसा अति अगम पाई सुगमता से
ज्यों दरिद्री पा गया हो कल्प तरु को
मोक्ष वा वैराग्य सुख सब क्षीण लगते
प्रभु स्वयं जब पुत्र बन सम्मुख रहेंगे

मन वचन निज कर्म से जन हो उसी का
मृत्यु भी हो दांव पर कृत कर्म नियमित
कुछ अदेय न रह सकेगा हरि सदन में
प्राप्त की सब अर्हतायें पूर्ण हैं यदि

झुक गईं सब शक्तियां उसके पदों में
वीर जिसकी नाद से हो गगन कम्पित
सिन्धु देता पथ सदा हुंकार सुन कर
अभिलषित पाता यहां बस वीर वर ही

त्रिविध क्रम से मनोवांछित प्राप्त जग में
शौर्य पहला है जहां सब स्वतः मिलता
न्याय से बल पूर्ण लेना दूसरा पथ
गिड़ गिड़ाकर याचना करना अधम है

अंजना प्रमुदित हुई सुन पति गिरा को
गर्भ के लक्षण उभर कर सामने थे
शुक्ल विधु सा बह निरंतर बढ़ रहा था
वदन आभा अरुणिमा सी खिल रही थी

विश्व दृढ़ संकल्प का नहिं कल्पना का
सार इसका प्राप्त होता साहसी को
कायरों की भांति उद्यम हीन रह कर
क्या मनोरथ पूर्ण होते हैं धरा पर

मनुज तन से मोक्ष द्वार कपाट खुलते
देखता वह भाव निज जन का हमेशा
कौन देता मूल्य उस उत्सर्ग का फिर
मोक्षद विद्या ग्रहण करना यथावत

दिवस यो ही बीतते आनंद में थे
अहर्निश विज्ञान की इतिहास गाथायें चली
निकट था मंगल दिवस हरि अवतरण का
नयन गोचर प्रकट होकर कह रहे थे

आ गया हूं तात तेरा पुत्र बनकर
बन गई साधन जननि ! मम जन्म का तू
कुछ अलौकिक बाल लीला प्रकट करके
राम हित साहाय्य का शोधन करूंगा

पुत्रवत तेरा जननि ! अनुचर रहूंगा
तात का पदचर बना खेला करूंगा
तुम इसे अति गोपनीय सम्हाल रखना
युगल वर आनन्द में बस मौन ही थे

शिखर का सौन्दर्य द्विगुणित लग रहा था
जगत का अनुपम वहां समवेत होता
सिद्धियां प्रमुदित नवागन्तुक मिलन को
पुष्प वर्षा कर गगन उल्लसित होता

मधुरिमा मृदुहास कर सब ओर फैली
अतिथि के शुभ आगमन की बाट होती
भूमि के तृण पवन से डोलित हुये से
हर्ष मानो पुलक मिस लहरा रहा हो

—००—

तृतीय सर्ग

जगत के हैं सौख्य जितने प्राप्त नर को
बाल केलि समान क्या वह सुख तुलेगा
सहज ही आनन्द होता अवतरित उर
फिर कुटिल रेखा न कोई प्रकट रहती

भावनायें सुखद हों वा दुखद जिनको
कवि हृदय निज सरल वाणी में पिरोता
काव्य सरिता की वही अनमोल लहरें
जो अतल से उमड़ बरबस निकल आती

घर हुआ सूना श्रवण हैं लालसा रत
उर उमड़ता छलकता वात्सल्य उससे
व्यर्थ हो, अनुराग भी निमूर्ल्यता वश चल रहा है
चुक रहा है मुहुर्मुह लुटता रहा जो

सुदृढ़ प्राचीर युत प्रासाद का अभिमान क्या ?
जो कपाटों अर्गला से रहित स्थित ढूह जैसा
इसलिये यह भूमि सुत अनुरागिनी है
शिशु चपलता किलक बालक की भवन शोभा

मनुज भी इस ठौर बाजी हारता है
और नारी की सफलता भी इसी में
अश्वमेधादिक यजन तप दान सब ही
बस इसी के हेतु होते आ रहे हैं

प्रति नवागन्तुक बनाता विश्व अपना
वंश बृद्धि परम्परा चलती इसी से
नब सृजन भी जाति हित में पग बढ़ाता
सौंपने को कार्य सुत बाँछा प्रथम है

देश जाति समाज हित उपकार करता
यश सुगंध वसुन्धरा पर हो विकीरित
चरित जिसके गगन तक भी गूंजते हों
तो जनक जननी अमित सुख प्राप्त करते

दीर्घ आतप से व्यथित मानव यहां यदि
पा गया हो छांव सुर तरु की शमन हित
मिल गया पारस दरिद्री जन्म को किवा
तो उसे सुख कल्पना अवशेष क्या है !

शत गुणित सुख प्राप्त जननी अंजनी को
निरखती विधु वदन सौन्दर्यानुरागी बन
चूम कर पुचकारती झूला झुलाती
गीत पथ से लाल हित निद्रा बुलाती

अंक में भर पान पय का वह कराती
हृदय का अनुराग स्तन में उतर आया
सुखद स्वप्निल कल्पना माधुर्य भरती
पुत्र हो दीर्घायु मां की कामना मंगल

विधु वदन पर कुटिल केश विराजते थे
ज्यों भ्रमर अवली सुधा पीने ललकती
पुष्प माला वक्ष भुज पर राजती थी
बंक भ्रू, पिंगाक्ष नासा अधर सरसिज

किलकिलारी सुन शिखर भी हर्ष भरता
गूंजती प्रति ध्वनि मुखर संगीत बनता
चौंक जाती अंजनी उठ पास आती
तात को देखा किलक कर दौड़ पड़ते

बाल केलि प्रमोद में दम्पत्ति हर्षित
स्वर्ग का आनंद ज्यों गिरि पर उपस्थित
वय बढ़ी पौगंड़ युग में शिशु चरण था
नीड़ से ज्यों विहंगशावक झांकता नभ

खेलने शिशु को खिलौने तात लाये
फिर सजाकर जननि ने बजने बनाये
किन्तु बालक क्या बहलता हठ पड़ा था
एक कन्दुक उछलने को चाहिये थी

बाल हठ आश्रय लिये था रुदन करता
फिर बुभुक्षा कुछ सहायक बन गई थी
मधुर फल लेने गई थी अंजनी बाहर
मित्र भी शिशु सम गगन प्राङ्गण निकलता

गगन अम्बुधि में बना प्रासाद स्वर्णिम
नील मर्कत शैल में विद्युत प्रभा ज्यों
व्योम में अंचल उषा का यों विलसता
नील मणि के चषक में खिलती सुरा ज्यों

उदय गिरि से तरणि विम्ब निहारता है
एक कन्दुक ज्यों गगन में उछल आई
कोई अथवा फल पका विधि ने दिया हो
मुहुमुंह शिशु देखता था ललकता सा

मातु नित्य उछाल कर देती मुझे फल
कूदकर उसको त्वरित मैं पकड़ लेता
आज कितनी दूर से वह फेंकती हैं
अस्तु इसको लपकना ही धर्म मेरा

किन्तु यह कन्दुक सरीषा कौन सा फल ?
समझ कर मधुरिम इसे मां ने उछाला
जब तलक वह इधर आयें मैं लपक लूं
चख इसे पय पान तब आकर करूंगा

बांध मुष्टिक श्वास खीचा तन फुलाया
वायु रोकी नाड़ियों में प्राप्त ऊर्जा
सिद्धियां सत्वर सहायक बन खड़ी हैं
एक हुंकृति में उछल शिशु ऊर्ध्वगामी

दृष्टि अपलक बिम्ब पर थी, क्रोध से मुख
हो रहा अरुणाभ ज्यों युग मित्र नभ में
प्रकट होते, सृष्टि का अनुपम, परम अद्भुत
देखते सुर मुनि सभी आश्चर्य करते

जगत के भवितव्य में यह क्या विलक्षण
जो नहीं देखा न अब तक सुन सके हैं
भूत के इतिहास में इसका न परिचय
ज्योतिषी, नभ ज्ञानियों को भी न सूचित

सृष्टि के नैमित्त में विघटन नया यह
सूचना होगी अमंगल नव ग्रहों की
हो गया विस्फोट दिनकर में भयंकर
दूसरा उपग्रह हुआ नभ में प्रकाशित

उड़ रहा था शिशु निरंतर व्योम ऊंचा
लस रहा नभ में विशाल अलात जैसा
पुत्र का हठ देख मारुत हर्ष भरते
ताप श्रम हरने उड़े वह साथ आत्मज के

भूमि गुरुत्वाकर्ष पर हुंकृत हुआ फिर
शिशु उड़ा आदित्य कक्षा में त्वरित गति
अन्य लघु ग्रह टूटते भयभीत जैसे
कौन रोके वायु सुत संवेग को फिर

निर्विराम उड़ान श्रम से रश्मि रवि भी
ज्वलित तन पर हिम सरिस अनुलेप करती
अदिति सुत सहमे, निरख, यह कौन आया
खींच ली किरणें ज्वलित अब तक रहीं जो

हो गये निस्तेज देखा राहु जैसा
दो हुये नभ में प्रकट मम ग्रास कर्त्ता
खर्व मेरा गर्व ग्रह स्वामी निरर्थक
हो रहा हूं व्यर्थ निष्प्रभ में असुर से

दिव्य आकृति देख पूषण कुछ सम्हलते
स्वस्थ मन से फिर किया स्वागत नवागत
दे रहे उसको वरासन अर्घ्य देकर
राहु भी आया अमावस दैव वश थी

भोज्यथा उसका दिवाकर ग्रहण करता
अन्य को बैठा निरख वह क्रुद्ध बोला
चोर! क्यों तू आ गया, हट, क्या मरेगा?
मुष्टिका शिशु ने हनी तब राहु भागा

इन्द्रपुर पहुँचा बुभुक्षित, दुखित पीड़ित
कर रहा परिवाद-कैसा न्याय सुरपति ?
भोज्य मेरा छीन देते अन्य को क्यों ?
खा रहा वह देख लो रवि भवन में चल

राहु को मतिभ्रम हुआ या नेत्र दोषी
कौन फेरेगा भला आदेश मेरा
तू रहा जिस योग्य वह तुझको समर्पित
जा निडर हो भानु का अमृत ग्रहण कर

देव ! मैं भयभीत उसके अतुल बल से
कर प्रहार न सह सका जो सहज ही था
चल रहा शोषण हमारे रवि अमृत का
बन्द कर दो, अन्यथा वह सब ग्रसेगा

मैं हुआ हतप्रभ वहां समझो शचीपति !
शीघ्र सायुध चल पड़ो देखो वहां पर
यदि हुआ किंचित विलम्ब न मिल सकेगा-
—रवि, निगल लेगा अशनमम, राहु बोला

हाथ लेकर वज्र ऐरावत सजाया
चल दिया सत्वर शचीपति बंक भृकुटी
गगन में तम छा गया रवि अस्त जैसा
बिम्ब था अवशेष, दिनकर शिशु वदन में

देखता शिशु आ रहे दो जन इधर ही
निगलने की लालसा में वदन खोला
भागता सुरपति भयातुर बज्र हन कर
हनु धँसी शिशु असंज्ञित हो भूमि पर था

पवन क्रोधित तनय की देखी दशा जब
कुछ न कहते गोद में रख उतर आये
वायु ने संचार निज रोका क्षुभित हो
श्वास अवरोधन हुआ जग सृष्टि घुटती

वायु निज संस्पर्श से उपचार करते
सद्य संज्ञा करक औषधियां प्रकट थी
पितृ उर भी शक्ति से करता समर्पण
अंजनी पय था प्रचुर इस हेतु यद्यपि

आगई जननी लिये फल मुदित होकर
देख सुत को पूछती क्यों हठ पकड़ता
गोद में ले पय पिलाया शिशु सजग था
प्रिय वदन को देख वह पुचकारती थी

खेलते शिशु से झपट वह पूछ बैठी
क्या छिपा मुंह में उगलता क्यों नहीं तू
खोल कर देखा अमित नक्षत्र ग्रह उलका तरंगें
गाल में निष्प्रभ दिवाकर सो रहे थे

हो रहा कृत कृत्य नभ झर सुमन अंजलि
सुर सहित सुरपति चतुर्मुख थे उपस्थित
विनय करते केसरी, अंजनि मरुत की
घटित कहते जो न दम्पति समझ पाये

हो रहा सुर सम्मिलन हेमाभ गिरि पर
छा रहा नभ में कुहासा आवरण तम
उन्मना थे केसरी अवनत मुखी मां
शांत थे सब देव कातर मन प्रभंजन

सुर असुर प्राणी चराचर छटपटाते
मनुज तन का धर्म प्रायः बन्द तब से
वायु तुम संचार अपना अब न रोको
धन्य हैं यह केसरी अंजनि युगल वर

शाप भी वरदान बन जाता किसी अवसर
कष्ट भी समुचित समय पर लाभ देता
प्रति अशुभ कोई न कोई शुभ दिलाता
भूल के प्रारब्ध जब तब सुखद होते

छा रहा तम विश्व में व्यापार बाधा
सृष्टि के सब ध्रुव नियम अवरुद्ध होते
भोर कैसे हो ? तमस शासन निरंकुश
अंजनी नन्दन प्रभाकर निगल लाया

मुक्त कर उसको करो उपकार जग का
इन्द्र आयुध बज्र इसका अब न हंता
सह लिया आघात बज्राङ्गी बना यह
विश्व में इस नाम से होगी प्रतिष्ठा

वदन कारा मुक्त होकर अंशुमाली
होश आया, कह रहे, भयभीत होकर
आह! वह मुख व्याप्त अगणित कोस में था
आभास होता मृत्युंजयीसम प्रलय कर्त्ता

बुद्धि वल विज्ञान यशधर जगत व्यापी
राम का नैष्टिक सहायक ब्रह्मचारी
कीर्ति होगी भुवन भर में धवल निर्मल
दे रहे बरदान चतुरानन सहर्षित

देव समुपस्थित हुये वर थापना को
सार गर्भित शब्द में बहु अर्थ वाणी
देव वरदान मिस थपते स्वयं ही
कर रहे आधान शिशु में शक्ति अपनी

विनय विद्या में निपुणता दे रहे रवि
वेद भी प्रागल्भ्य देते दिव्यता युत
चिरंजीवी यह रहे अमरत्व वर ले
वज्र इसका तन स्वयं यह इन्द्र वाणी

सौंपता इसको तथापि गदास्त्र मन्वित
समर में जिसका प्रहार विनाशकारी
धीर कोई विरल इसको धार पाता
योग्यता में परम ज्ञानी चतुर भाषी

गगन, जल, थल में सदा गतिमान होगा
गमन अव्याहत रहे वर वरुण देता
अनल ने निर्दाहता दी मुदित होकर
यह जहाँ चाहे वहां मैं प्रकट होऊंगा

नाग पाश कि ब्रह्म पाश प्रभाव तजकर
विनयरत दूरस्थ होंगे निष्प्रहारक
मरुत ने भी मुदित हो वर वृष्टि करदी
वेग अप्रतिहत रहे मन से त्वरित गति

सिद्धियाँ कर बद्ध सब सम्मुख उपस्थित
थपित होती प्राप्त कर निज उचित भाजन
समर दुष्कृत कर्म में व्यापार में सब
यह जितेन्द्रियमन मनोजव तन सदा ही

काल ने अजरत्व सौंपा, धर्म ने दी धर्मिता
शैलजा ने भक्ति दे दी ईश से ईशत्व अर्पित
धनद ने सम्पत्ति दे दी नाम कमला ने दिया
आज से हनुमान शिशु का नाम संस्कारित

बन रहा प्रासाद शिशु सब शक्तियों का
शोक आतुर राम को विश्राम देगा
विश्व की दावाग्नि से संतप्त मानव
शान्ति पाये त्राणसंग विषयानुरक्ती

देवदानव यक्षकिन्नर नाग निशिचर
पशु विहँग मानव चराचर मर्त्य में भी
प्रेत भूत पिशाच त्रिभुवन काल भय में
अंजनी सुत सम न था हो भी न सकता

केसरी अंजनि युगलवर परम यशधर
किम्पुरुष अभिजात से बढ़ धन्य होतीं
धन्य है वह दक्षिणापथ जन्म जिसमें
सृष्टि में त्रयलोक में गाथा अमर है

दिवस दम्पति के मधुर आनन्द में व्यय
वय बढ़ी शिशु चपलता के भाव बीते
पितृ अनुशासन नियम अधिनियम बदले
केलि कौतुक की जगह अब अध्ययन था

प्रकृति ही थी पाठशाला व्योम नीचे
घन विटप पशु विहंग देते पाठ्यक्रम
ग्रह चलन से सूचना मिलती भविष्यत
सीखते भूगोल जैविक नभ समीक्षा

अध्यात्म भौतिक ज्ञान में परिपूर्ण शिक्षा
वेद पाठन की मनीषा प्रौढ़ता पर
वटुक शिक्षा के सभी संस्कार समुचित
अंशुमाली दे रहे गुरुवत निदर्शन

पूर्व में वेदांग का सोपान पूरा
कर रहे निष्णात गुरुवर व्याकरण में
स्वच्छता आरोग्यता के नियम पलते
खेल से तन पुष्ट और बलिष्ठ करना

आ गया दीक्षान्त का सन्निकट अवसर
प्राप्त शिक्षा फलवती परमार्थ में हो
श्रेय पथ पर अग्रसर अनवरत गति से
शौर्य बल विज्ञान में सम्पन्नता सम्मुख रहे

शिष्य ! अब गुरु दक्षिणा का भार तुम पर
दे सको तो माँगता हूँ एक हीं प्रण
मम तनय सुग्रीव के साहाय्य बन कर
बालि से उसको बचालो तुम उऋण हो

धन्य मेरा भाग्य जो यह भार सौंपा
बन सहायक नीति का अन्याय मेटूं
कार्य गुरुतर भी करूँ परमार्थ में ही
मैं सदा सुग्रीव हित चिंतन करूँगा

पठन से अवकाश पाकर खेल चलता
भार तोलन हेतु प्रस्तर खण्ड गुरुतर
बाहुओं पर तुलित होकर फेंकने से दूर
डोलती भू, घोर रव से वन मुखर होता

ऋषि कुटीरों के विटप पर नित्य चढ़ कर
हिलहिलाये, फल गिराकर उकस डाले
नित मिला परिवाद अंजनि सुवन चंचल
त्रस्त है ऋषि शैल कोई फिक न जाये

देख कर तेजस्विता वाणी विमल सुन
कुछ न कोई कह सका वटु संघ चलता
बन गया बहु संख्यकों का मित्र मण्डल
राष्ट्र तन समृद्धिहित चलते अखाड़े थे

मांग है वीरत्व की तन पुष्ट मांसल
हो रहा संग्रह परम बल वीर्य्य निष्ठा
राष्ट्र नैतिकता इसी से विकसती है
स्वास्थ्य चारित्रिक रहित हर देश रोता

भोगवाद, शरीर का अंतिम न पग है
लोक से उस पार का विज्ञान भी कुछ
दृष्ट करने को उसे अध्यात्म पद है
देश जाति समाज की सुन्दर व्यवस्था

देश की अनुरागिनी संस्कृति बताती
शक्ति का संचयन जाति स्वधर्म हित हो
सत्य का अनुसरण करते न्याय पथ पर
धैर्य दृढ़ता युक्त अविचल कर्म के प्रति

नियम अनुशासन सभी सम्मान्य पलते
पुष्ट तन में हृदय मन गम्भीर होता
सर्व रक्षा भावना होती उपस्थित
वीरता से त्राण पाते न्याय, प्राणी

वीरता के धर्म में प्रज्ञा विकसती
मनुज नित गुण वृत्तियों वत कर्म पाता
तनिक विघटन से समूची सृष्टि हिलती
सूक्ष्म अणु परमाणु तक होता प्रभावित

शांति विस्थापित हुई है वीरता से
शक्ति के बल में हमेशा नियम पलते
परस्पर साहाय्य की गाथा पनपती
भ्रष्टतायें फिर कहीं भी टिक न पाती

मूल में वटु संगठन के भावना यह थी
हो रहा विस्तार प्रतिदिन अखिल भू पर
किम्पुरुष की जाति सुगठित हो रही है
पठन पाठन ध्यान योग समान चलता

शक्ति का वह पात्र जिसमें विनय करुणा
हीन इससे नर सदा शोषण करेगा
आर्द्रता, मृदुताशरण अभिमान जनहित
क्षमा क्रोध प्रताड़ना यह वीर के गुण हैं

अतुल बल की पूर्ण दीक्षा हो गई जब
हस्त लाघव कुशलता में कीर्ति मानी
जानकर हनुमान को बल ज्ञान वारिधि
पूर्ण रक्षित कर दिया कल के लिये वह

बल अतुल तुम भूल जाओ वायुनन्दन
अन्यथा अभिमान का अंकुर जमेगा
काम आयेगी जगत हित यह कुशलता
याद जब कोई लगाये कठिन क्षण में

शाप वा वरदान तुम कुछ भी समझ लो
नय विनय उत्पन्न होगी विस्मरण में
किम्पुरुष भूपाल के अनुचर रहो तुम
उचित अवसर पर तुम्हारा पथ खुलेगा

ऋषि समिति का सार गर्भित फैसला यह
रुक गई उद्दंडता चापल्य इससे
अब न वह मुनिवस्य भाजन तोड़ पाते
मुख मलिन इस विफलता से था न किंचित

मां-पिता से प्राप्त अनुशासन किया फिर
राम दर्शन की हृदय में लालसा जागृत
चल पड़े निज जन्म का प्रिय हेतु लेकर
भक्ति वर्द्धन के अमित जिज्ञासु बन वह

युग युगों से प्रतीक्षा यह कर रहा हूं
कौन पथ से आ रहे है दाशरथि प्रभु
कौन सी गिरि कंदरा में बैठ कर देखूं
काल आया सन्निकट अब आगमन का

--००--

चतुर्थ सर्ग

बिधि ! बता दे आज मेरा दृष्ट क्या है
त्राण पाने की जगह अब बूझता हूं
समय की गति में पड़ा डगमग तरणि सा
विवशताओं से भरा जीवन, उसी से जूझता हूं

दीप को लघु टिमटिमाता देखकर ही
चतुर्दिक उठते प्रभंजन रोष खाकर
मेंटता तम लघु भुजाओं की परिधि का
बलवती हो ईर्ष्या उठती भयाकर

धिक् महा आवेग को बन शक्तिशाली
अपर जीवन से सदा ही खेलता है
भावना अधिकार की बन ज्वलनशीला
त्रस्त होकर शक्ति को वह झेलता है

बन गया हूं एक उल्का खण्ड जैसा
भाग्य हत श्री सेविरत निरुपाय सा हूं
स्वजन का बिश्वास भी अब डोल जाता
दैव की विकरालता को देखता हूं

कौन सी लिपि में लिखा है भाग्य मेरा
बस विपर्यय ही मिला परिणाम अब तक
प्रति चरण उर कम्प मन बहुधा शशंकित
शान्तिदा बिश्राम क्षण आया न अब तक

बिधि विडम्बन ! धन्य तेरा कर्म बंधन
विफलता के मूल में क्या ध्येय तेरा
बैठ जाता हूं तिरस्कृत सा अकेला
साथ देती है सखिन्ना प्रकृति मेरा

पूछता कोई कुशल तो व्यंग लगता
बात भी चलती लगा परिहास होता
पूर्वकृत ऐश्वर्य की अनु गूंज सुनकर
करकती है मर्म में निशशब्द रोता

पग न रखने को कहीं भी ठौर पाता
आ गया दुर्भाग्य मेरा मूर्त्त होकर
अमित प्रस्तर खण्ड से टकरा रहा हूं
विफलता के तमस में दिग्भ्रांत होकर

सफलता अभिशप्त होकर मिल गई है
दैन्य के निर्द्वन्द्व शासन में भटकता
घूमता याचक बना सा त्राण पाने
द्वार स्वामी के नयन उर में खटकता

खो चुका साहस निराशा छा रही है
मोह जीवन से न अब कुछ रह गया है
हम हमारे बीच में विकराल रेखा
गल गया अस्तित्व मरना रह गया है

निशि सदा रोती रही नीहार के मिस
डालती घेरा हृदय आगन उतर कर
बांटती विश्राम कर आंखें उनीदी
धिक् ! न करती न्याय सम प्रतिस्पर्धा समझकर

काल का यह भी विवर्तन आ रहा है
और उसका लक्ष्य भी मैं ही बनूंगा
धैर्य का भी सेतु टूटा जा रहा है
हा ! हुआ क्या ? यातना कितनी सहूंगा

प्राण तन मन हेतु जिनके बन गये थे
त्रास देते है मुझे जो निरवलम्बन
दुर्दिनों का डूह है प्रासाद मेरा
विधि विडम्वन ! विधि बिडम्वन ! विधि विडम्बन ! ! !

जगत के टूटे सभी जो थे सहारे
या कि छीने हैं किसी ने क्रोध में भर
शुभ कहूं किंवा अशुभ अब हार बैठा
विहँग पंखों में बंधे पाषाण गुरुतर

और कितनी यातना सहनी पड़ेगी
क्या कभी इस वर्जना का अन्त होगा
अवधि का दुख आस में लगता नहीं है
किन्तु निरवधि कष्ट क्षणक अनंत होता

यह भरा अपमान का जीवन कठिन है
दृष्टि में सबकी उपेक्षित हो रहा हूं
पास होकर भी सभी कुछ फल न पाता
अहर्निश लघु भावना से गल रहा हूं

अब न रुचिकर लग रहा छाया स्वयं का
मुकुर का प्रतिविम्व मुझको हेय लगता
बन गये बैरी पुराकृत कर्म शुभदा
तन विकल व्रण युक्त जैसे मन सुलगता

आर्त्त का विश्राम दायक छूट जाता
आपदा में मित्र का संयोग नसता
चन्द्रमा श्री बंधु शिव भूषण शची प्रिय
संग कोई भी नहीं जब राहु ग्रसता

कब तलक आक्रोश में तू दण्ड देगा
दे परन्तु न घोल अब ऐसा हलाहल
राज्यच्युत होकर मिटी क्या प्राण पीड़ा
नमित मुख हो देखता अपना रसातल

लुट गया वर्चस्व शववत .जो रहा हूं
जातिगत अपमान का लोहू पिया है
मार खाकर भी रुदन को अनधिकृत हूं
जो कहूं तो दोष भी जग ने दिया है

न्याय भी होता सबल का पक्ष धर ही
मौन है वे बंधु जिनके स्वार्थ पूरे
निबल की कोमल गिरा भी परुष लगती
विज्ञ के उपकार वह पाता न पूरे

डोलता हूँ द्वार देहरी बन अकिंचन
भिक्षु की आशा निहारे सबल सबको
स्वत्व का मिथ्या अहं जब नयन चढ़ता
ईर्ष्यानिल में वह जलाता अपर भव को

इस तरह जीवन जिये का लाभ क्या है
मृत्यु की गहराइयां जिसमें लिखी हों
प्रति सशंकित क्षण हृदय दुर्बल बनाता
एक घटिका भी नहीं निर्भय दिखी हो

कालिमा पोती गई जबरन वदन पर
दोष मिथ्या ही लगा प्रस्तुत किया हूँ
बाद में अपराध भी स्वीकारने हैं
अन्यथा बस ! सुन इसे चुप हो लिया हूँ

कौंधती स्मृति कभी प्राची घटित की
क्रोध, जड़ता, स्वेद, कम्पोच्छवास मिलकर
घेरते तन, तमस छा जाता नयन में
भावना है चीर डालू सबल बनकर

आर्त्त हो सुग्रीव उठ बैठा शिखर पर
एक क्या बहु यामिनी जगते गई हैं
थकित तन, मन उन्मना पलकें उनीदी
निशा गमनोद्यत अरुणिमा छा गई है

देख कर विस्मित हुआ, यह कौन आता
बालि जैसा ही भयंकर लग रहा है
हो न हो यह गुप्तचर प्रेषित किया है
नयन दक्षिण फड़क कर कुछ कह रहा है

आगये हनुमान सत्वर शिखर पर ही
देख कर निज जाति अभिवादन किया है
कौन हो तुम वीरवर? क्यों मलिन मुख है?
पूछता हनुमान मैं परिचय दिया है

मित्रता का हाथ मैं फैला रहा हूँ
कौन सा दुख जो तुम्हें विचलित किये है
देखता मुख पर तुम्हारे कुटिल रेखा
बांट लूंगा दुख तुम्हारे, दो हुये हैं

दीर्घ आतप ताप से व्याकुल पथिक ज्यों
पा गया हो छाँव सुरतरु की शमन को
प्राण कंठागत तृषित को अमृत किवा
हर्ष होता शत गुणित दिनकर सुवन को

बालि की संत्रास का मारा फिरा हूँ
राजनीति प्रबंचकों ने ठग लिया है
का पुरुष, कुत्सित, कुटिल, क्रोधी, अकारण
धर्म हीन कुबंधुओं ने बल दिया है

सत्य पर आरूढ़ हूँ क्यों दंड भोगूं
मात्र मैं अधिकार अपना मांगता हूँ
योग्यता को यदि नहीं है ठौर समुचित
क्रान्ति का उद्घोष करना चाहता हूँ

मित्र ! यह वांछा तुम्हारी पूर्ण होगी
किन्तु क्रम से कार्य का विस्तार करलो
देश अवसर काल का हो न्याय पूरा
विधि स्वयं ही देखता संकल्प कर लो

जब नही हो पूर्ण बांछा विश्व में निज
प्राप्ति आशा भी नहीं अवशेष रहती
तब समझ लो देव के तुम उपकरण हो
योजना उसकी तुम्हें संलग्न करती

यह समूचा विश्व उससे चल रहा है
व्यक्ति उसकी प्रेरणा से कार्य करता
मैं कि तुम उस हेतु की लघुतम इकाई
काम कुछ भी कर नहीं पाये स्ववशता

कर्म में सलग्न जितने चर अचर है
परम सत्ता कार्य का ही अंग बनते
ज्यों श्रमिक बहु निरत निज निज कर्म में
एक सुन्दर भवन का निर्माण करते

हो रहा सम्पन्न तुमसे कार्य जो भी
विश्व उससे पूर्णता को पा रहा है
काठ पुतली की तरह नर नाचता है
सृजन वह भवितव्य का करता रहा है

इसलिये जो हो रहा उसको निहारो
देव का जो मिल रहा स्वीकार कर लो
रह किसी एकान्त रक्षित शैल कन्दर
हर्ष पूर्वक इस समय को पार कर लो

समय की करलो प्रतीक्षा और रुक कर
आतताई का निधन अब पास जानो
राम, दशरथ तनय, कौशलराज, ईश्वर
आ रहे अवतार ले विश्वास मानो

ऋष्यमूक नगेन्द्र कन्दर रह युगल वर
पूर्ण रक्षित रबितनय हनुमान द्वारा
दो धनुर्धर दूर आते देख सम्हला
रूप रख परिचय करो लो भेद सारा

जगत में जीवित न छोड़े बंधु बैरी
वह निरंतर निधन मेरा चाहता है
आ नही सकता स्वयं अभिशप्त है, तो
वीर वर दो धनुर्धर को भेजता है

मित्र मम हनुमान तुम चातुर्य निधि हो
भेद इनका ले सको तो शीघ्र लेना
संधि का प्रस्ताव रखना मान लें यदि
अन्यथा मैं शैल त्यागूं सैन देना

विप्र का सुन्दर बनाया वेष कपि ने
हाथ में अपना परम आयुध लिया है
मार्ग में सत्वर उपस्थित हो गये वह
नमित मुख करबद्ध अभिवादन किया है

देखते हनुमान सुन्दरता चकित हो
प्रेम अम्बुधि में उमगते जा रहे थे
छलक आये नयन में मोती पुलक तन
पूर्व संस्मृति खोल कहते जा रहे थे

मणि प्रभा सम कौन तुम सुन्दर विपिन का
कर रहे अभिषेक आभा से युगल वर
विखरता सौन्दर्य अविरल व्योम भू पर
विजन का आनन्द ज्यों आया प्रकट कर

कौन से भू भाग को विरही बनाकर
बिलखता माँ-बाप को तज आ रहे हो
कौन सा वह देश श्री वंचित किया है
तमस, हतभाग्या बना कर आ रहे हो

कौन जननी जनक के शुभ फल पुराकृत
प्रकट हो नर रूप में जग को दिखाते
कौन है वह धन्यभागी राजधानी
नयन होने का पुरीजन लाभ पाते

सहमती बसुधा कमल कोमल चरण से
शूल कुश कांकर सभी उसने छिपाये
मग न योग्य तथापि चलते जा रहे हो
गौरश्यामल तन वसन मुनि के सुहाये

नगर के ऐश्वर्य से क्या आप्त होकर
विपिन की एकान्तता को खोजते हो
तीक्ष्ण शर धनु का उठाये भार गुरुतर
क्या असुर आखेट के मृग देखते हो

वन गहन, तमसी निशा गंभीर प्रान्तर
भूप सुत की कौन सी निधि छिप गई है ?
हो गये विचलित तुम्हें लख वन्य प्राणी
प्राण आशा अब न उनको रह गई है

विप्र की सुन वाक् पटुता मैं चकित हूँ
साम, ऋक्, यजु में प्रखर विद्वान होगा
यह महा शास्त्रज्ञ, संस्कृत, विदित होता
भेद लूं सौमित्र इसका कौन होगा ?

व्याकरण की भूल किंचित भी नहीं थी
शब्द कहने में विकृति मुख पर नहीं थी
देव वाणी लोक भाषा समधिकृत हैं
युग्म का निर्वहन सम, अनुचित नहीं थी

किन्तु होकर विप्र यह क्यों झुक रहा है
साथ ही आयुध लिये कैसा बिलक्षण
कपट का व्यवहार यह क्यों कर रहा है
हो रहा मुझको तनिक इससे विकर्षण

अवधपति दशरथ तनय मैं राम हूँ
अनुज लक्ष्मण साथ, भामिनि जानकी
अपहृता उसको विपिन में खोजते है
राज्य च्युत हो देखता निधि प्राण की

क्षम्य हो यह कपट का व्यवहार मेरा
धृष्टता मुझसे बड़ी अनुचित हुई है
शिशु रहा तब ही किये दर्शन तुम्हारे
चपल मति पर यवनिका चित्रित हुई है

वचन देकर आपने मुझको पठाया
आ रहा वनबास में, मग जोह लेना
युग बहुत बीते मुझे रुकते यहीं पर
सेव्य ! सेवा का न अवसर छोड़ देना

विकलता में विस्मरण मेरा उचित था
छद्मवेषी बन उपस्थित हो रहा हूँ
आपका अनजान बन कर पूछने से
क्या मुझे प्रभु ने भुलाया, रो रहा हूं

छद्म से परिचय करूं किस लाभ को मैं
अंजनी नंदन हमारे प्राण प्रिय हो
नित्य मानस पटल पर अंकित रहे तुम
अब कहो किस ठौर पर प्रियवर! सक्रिय हो

क्षणिक परिचय से हुआ सब ज्ञान कपि को
राज्य च्युत दो मित्र बन जाते परस्पर
क्यों नहीं सुग्रीव से इनको मिला दूँ
एक दूजे के लिये होंगे सुहृद वर

शैल पर कपिनाथ सुन्दर ग्रीव रहता
आपसे वह मित्रता का परम इच्छुक
अति भयातुर को मिलेगी शक्ति तुमसे
आप पाते जानकी शोधक सुरक्षक

दो समानार्थी हुये समवेत ऐसे
एक पूरक बन रहा है दूसरे का
अग्नि साक्षी दें करें निज लक्ष्य पूरे
एक हितचिंतक बनेगा दूसरे का

मुदित हो द्वय बंधुको कंधे चढ़ाया
चल दिये सुग्रीव ने देखा शिखर पर
उभय पक्षों की कथा हनुमान कहते
प्रीति के संबंध बांधे हैं सुदृढ़तर

बालि ! तू मेरा परम प्रिय शुभ हितैषी
राम से संयोग का तू मूल कारण
जो नहीं मुझको दिखाता ये बुरे दिन
आपदाओं से न होता तरन तारन

बालि उसके मार्ग का कंटक बना था
लक्ष्य में प्रस्तर समान कराल बनकर
भाग्य हत सुग्रीव तब निरुपाय सा था
पा गया अभिलषित उसके प्राण हत शर

राज्य की मादक सुरा में मग्न होकर
दीर्घत्यक्ता नारियों में कामरत था
भूल बैठा मित्र के उपकार सब कुछ
विश्व को विस्मृत किये वह विषय रत था

अपर ओर हिलोर विरह पयोधि की थी
कोंध जाती तड़ित वत प्राची अनिल से
यामिनी का गरल रग रग में समाता
उर जला, सुग्रीव कामिनिरत, अनल से

काम दामिनि दण्ड का चाबुक चला कर
कह रहा है राम ! हा ! तुम बिपिन बासी
उस तरफ नारी अलिंगन है निरंकुश
देख लो सुग्रीव कितना सुख विलासी

कामियों की ईर्ष्या सद्य ज्वलन शीला
दूसरे का हनन वह करती रही है
बालि घातक शर उठा सुग्रीव हित भी
काम की यह भावना उठती रही है

मूर्ख कल की विरह पीड़ा भूल बैठा
दण्डवत निष्प्राण सा पग में गिरा
ध्यान तुझको है नहीं मेरी व्यथा का
अब प्रबंचक बन वचन से भी फिरा !

गिरि प्रवर्षण पर रहे श्री राम सानुज
ज्ञान गाथा कह बिताया चतुर्मासा
बायु सुत सेवा निरत थे युगल वर की
मित्र निष्क्रिय हो गया छाई निराशा

राम मुख पर कुटिल रेखा देखते ही
क्रुद्ध हो पहुँचे पुरी हनुमान उन्मन
मित्र का उपकार पूरा कर दिया क्या ?
हो सचेष्ट, सकोप में हैं आज लक्ष्मण

हो गया निष्क्रिय सुनो मेरे परम प्रिय
बिंध गया मैं कामिनी के नयनशर से
कर्म क्या मेरे उचित तुम ही बताओ
कर नहीं कोई सका उपकार कर से

शर हमेशा वीर को ही बीधता है
यह अलग है तीर हो वह राम का
बालि उसके योग्य था तुम वीर ऐसे
जो विधा वह अपर शर है काम का

खो दिया अवसर अगर अपमार्थ का, मति–
क्षणिक सुख की वासना में भटक जाती
तब नहीं ऐश्वर्य कुछ भी काम आये
जग कहे तुमको कलंकी बंधुघाती

त्याग दो यह, सत्य का आश्रय पकड़ कर
जिन्दगी का परम लक्ष्य विचार कर लो
स्वभोग वा सीतान्वेषण में उचित क्या
मित्र से वाग्दान का कुछ ध्यान धर लो

भू निवासी किम्पुरुष जो भी जहाँ है
श्रवण करते ही पधारें राजधानी
यह वचन सुग्रीव का उद्घोष कर दो
रह न जाये शेष कोई वन्य प्राणी

सचिव, हित प्रद, मित्र मम हनुमान तुम ही
राम वामा शोध का दायित्व व्रत लो
शैल पर सामीप्य में तब ही चलूंगा
राघवानुज से अभय का वचन भर लो

देखता है दांव निज का ही जुआरी
राम भी सुग्रीव को देखा मुदित है
योजना आदेश अनुनय मंत्रणायें
चल रही, करणीय क्या सबको उचित है

बालिसुत युवराज अंगद प्रमुख नेता
ऋक्षराज, प्रधान यूथप संग हनुमन
चल दिये मासान्त का आदेश लेकर
दे रहे अभिज्ञान राघव अति मुदित मन

शक्ति पथ में प्रति चरण होती परीक्षा
धैर्य, साहस, धर्म, आस्था परख जाते
भक्ति का आदर्श खिलता स्वर्ण जैसा
अन्यथा सब ही मनोरथ डूब जाते

योजना पथ में जलधि बाधक बना है
कह रहा जैसे उसे जो पार कर ले
शक्ति के समवेत गुण उसमें मिलेंगे
यह परीक्षा केन्द्र है जग विजय वर ले

चल रही कपि मंत्रणा जलनिधि किनारे
कौन उल्लंघन बली यह कर सकेगा
बल कहो निज निज महा बलबान बानर
सिंधु जैसे शक्ति का मापन करेगा

आत्मबल विश्वास सबका शिथिल होता
देखते जब सिंधु को निस्सीम सा था
हुमकता साहस वहीं फिर बैठ जाता
मौन सब, वातावरण निस्तब्ध सा था

उर्मियां विकराल थी व्यालिनि सरोषी
फेन मिस विष वमन करती फन पटक कर
कह रहा चिंघाड़ कर शासन निरंकुश
प्रबल झंझानल उसे मथता झटक कर

कह रहा ऋक्षेश धिक पौरुष, युवापन
बृद्ध हूं मैं अन्यथा सौ सिंधु तरता
युवक था नित सप्त भू परिक्रमण देकर
सप्त जल से सूर्य को अंजलि परसता

मौन क्यों हनुमान बैठे एक दिशि में
मुख्य आशा अब तुम्हारी ओर ही है
अंजनी नंदन, पवन सुत वर प्रदायक
योग्यता इस कर्म की तुम ओर ही है

राम तुममें हैं बिलसते राम तुमसे
राम के ही हेतु, पूरक, कार्य कर्त्ता
शक्ति के तुम परम प्रियवर पात्र हो फिर
ध्यान करलो अब उसे संताप हर्त्ता

बल तुम्हारा अप्रमेय, पराक्रमी हो
शिशु वयस में सूर्य के अतिक्रमण कर्त्ता
अमित गुण आगार हो निज ओर देखो
तेज निज संस्मृत करो हे सौख्य भर्त्ता

खुल गये मानस पटल तन पुलक होता
शक्ति आयातित हुई प्रतिरोम द्वारा
वदन सिन्दूरी प्रभासम हो रहा था
पर्वताकृति तन बढ़ा घिर व्योम सारा

ऋक्षपति बोलो मुझे है उचित क्या क्या
एक क्या शत सिंधु गोपद सम तरूंगा
गिरि त्रिकूट समेत लंका को उखाड़ूं
जानकी शोधन निखिल भू में करूंगा

तुम अगर आदेश दो तो लंकपति को
सैन्य संग निपात कर दूं मैं अकेला
बांध लाऊं मैं उसे अथवा यहीं पर
जानकी को ही उठा लाऊं अकेला

सत्य हनुमन बल तुम्हारा, किंतु तुमने
योजना के क्रमिक पग भी लांघ डाले
इसलिये तो शक्ति अनुचर धर्म की हैं
कर्म उतना ही कि जो औचित्य पा ले

वीर वर तुम जानकी सन्देश लेकर
त्वरित विरही राम को आकर सुनाओ
साध्य हित साधन सभी उपयोग्य होते
हानि किंवा लाभ का मत सोच लाओ

देख हनुमच्चरित कपि दल हर्ष भरता
व्योम में जय जय महा उच्चार होता
हिल गया पयनिधि हृदय कंम्पित मुहुर्मुह
तन निराशा धुल गई रवि प्रकट होता

बढ़ रही विकरालता ज्यों ज्यों उदधि की
दे रहा उत्साह वह मारुत तनय में
उग्र प्रकम्पित गर्जना कपि की हुई जब
राम कार्य हितेषणा प्रकटी हृदय में

—००—

पंचम सर्ग

है निशा घोर गंभीर प्रांत
निस्तब्ध मौन परिभ्रति भ्रांत
सब लता गुल्मबट चित्र लिखे
उठते नभ में घन धूभ दिखे

बस गगन उगलता अंधकार
तमसा प्रतिक्षण पल दुर्निवार
झिल्ली तक की झंकार मौन
दिक् ज्ञान शून्य बस मरुत गौन

ज्यों सहम गया हो बन्य प्रान्त
गिरि कंदर में छिप गया क्लांत
किंवा सुनकर सिंधोल्लंघन
चर अचर भयातुर अन्तर्मन

गिरिविवर नीड़ कंदर तरु पर
तकते बैठे साहस खोकर
नभ बहु तारागण प्रकट किये
स्वागत हित पुष्प विखेर दिये

बस सिंधु गरजता बार बार
अप्रतिहत गति निस्सीम धार
निर्द्वन्द्व राज्य कहता दहाड़
शत शत उर्मिल उठते पहाड़

करता मंथन झंझानल जब
भरता दिशि में अतिदारुण रव

बहु फेन उगल फुसकार भरी
लहरें व्यालिनि सी क्रोध भरी

प्रतिपल होता शम्पानिपात
फन फैला करती दृष्टिपात

विकराल प्रलय का उठा ज्वाल
होता जाता प्रतिक्षण कराल

रावण पालित लंका प्रहरी
परकोठ बनी खाई गहरी

गर्जन उसकी उठ कहती है
उल्लंघन एक चुनौती है

पीछे करना लंका उजार
पहले मेरा कर वक्ष पार

मेरा अतिक्रमण दिग्विजय रूप
अपनी सत्ता का मैं स्वयं भूप

कपिदल हर्षित था बार बार
नभ गुंजित जय हनु महोच्चार

रजनी हताश घन तिमिर नाश
ज्यों निकला रवि आशा प्रकाश

किल्लोर हिलोर पयोधि बढ़ा
नव जीवन यौवन ज्वार चढ़ा

गर्जन घननाद समान किया
उद्यत कपि नै गिरि चरण दिया

ज्यों ज्यों पयोधि होता कराल
प्रकटित करता कालोर्मि जाल

चढ़ता त्यों त्यों विक्रम अपार
हनुमत मन में उत्साह ज्वार

कपि बढ़ा व्योम मे भीमकाय
लहराता था लांगूल प्राय

हर्षित हो भीषण किया नाद
कम्पित वीरों का क्षर प्रमाद

चढ़ गये शिखर पर अति सत्वर
पदभार झुका गिर गये शिखर

गिरिवासी सुर नर गंधर्वा
तज चले निजाश्रम मुनि सर्वा

तन रोम रोम आवेग महा
संचित हो पुंजीभूत कहा

गति तन में इतनी संग्रहीत
आलंका मैं त्रयलोक जीत

सत्वर लौटूंगा राम पास
मिट जाये कपिदल का निराश

कपि चरण दबा उद्यत् उड़ने
गिरि सहन सका लगता धसने

पुष्पित तरु गुल्म शिखर ऊपर
डोलित हो चरमर गिर भूपर

झर गये सुमन बहु गंध रंग
करते स्वागत ज्यों दूत अंग

भरली छलांग हुंकार युक्त
बढ़ वेग प्रभंजन समायुक्त

तरु भीमकाय उखड़े, अनुचर
सम पीछे चलते थे बनकर

कुछ शनैं शनैं सिधोर्मि गिरे
गृहपा, सँगतज, ज्यों पथिक फिरे

वा अतिथि विदा कर गृहबासी
किंवा शासक को पुरबासी

तन में अमोघ बल भर महान
तत्पर सम्मुख ज्यों राम वाण

मन प्राण नयन में एक बोध
अति शीघ्र सुनाऊं सिया शोध

कपि का देखा यह सत्याग्रह
सागर करता मैनाकाग्रह

यह राम दूत परमार्थ कार्य
फिरना इसका है अपरिहार्य

तन में गति मन उत्साहित भर
प्रति रोम सुदृढ़ संकल्पित कर

वर वरुण दत्त अव्याहत गति
प्रज्ञस्थमहा अति अविचल मति

देना होगा इसको विराम
कुछ बनो सहायक कार्य राम

व्योमोन्नत हो स्वागत करने
विश्राम क्षणिक तन श्रम हरने

मेनाक बढ़ा देने विराम
हित साधन हो करलो विश्राम

यह परम असम्भव शिखर राज
मैं त्वरा लिये हूँ रामकाज

यह दौत्य कर्म विश्रामहीन
गुरुतर उत्तर न हिं मुखमलीन

यह विश्व कार्य जब तक न पूर्ण
हीनार्थ रहे जीवन अपूर्ण

निज लक्ष्य प्राप्ति से पूर्व अगर
फसता हूं निज सुख भोग डगर

तब होगा यह विश्वासघात
दुख दोषों का होगा निपात

सोपान तीन से कार्य सरल
उत्कट अभिलाषा उर अविरल

जागृत उर में हो तीव्र भाव
संलग्न कर्म व्रत का प्रभाव

अभिलषित हेतु योग्यता प्रथम
हो ज्ञान क्रिया विधि का उपक्रम

जिस भाजन में यह समाविष्ट
जग में न रहा कुछ शेष क्लिष्ट

वांछानुरूप योग्यता प्रथम
रहती तथापि विधि क्रिया विषम

हत भाग्य मनोरथ नभ प्रसून
होती प्रज्ञा भी फल प्रसू-न

बल अप्रमेय तुम ज्ञान निलय
संकल्प सहित उद्योग विलय

तुम योग्य पात्र इस कठिन कार्य
जग होगा हर्षित कीर्ति धार्य

बल सदा रहा है उच्छृंखल
विश्वास सदा निज का केवल

अंकुश बनता है ज्ञान योग
होता बल का समुचित प्रयोग

बल पा जाता जब बुद्धि त्राण
प्रति चरण सफल बन प्रवहमाण

तन शक्ति प्रसवती अहंकार
मन में भर जाते बहु विकार

कर्त्तृत्व अकर्त्ता बीच भाव
बन जाता है दंभी स्वभाव

बल की सर्वत्र परीक्षा है
समुचित विवेक ही दीक्षा है

कंचन वत होता अग्निसात
उत्तम बनता है भस्मसात

हो जाती है अति मूल्यवान
ज्यों स्वर्ण भस्म करती निदान

हनुमत पथ में विक्रम विवेक—
के प्रश्न चिन्ह पग पग अनेक

हो दूर दृष्टि पौरुष अपार
हल करने हैं वह दुर्निवार

होगा इसमें जो पूर्ण सफल
वह कीर्त्तिजयी सर्वज्ञ विरल

असफल अयोग्य का कर्म व्यर्थ
होगा इससे सब कुछ अनर्थ

आ गया परीक्षा का स्थल
सुरसा सम्मुख पथ पर व्याकुल

आगई समस्या गति मंथर
मेरा आहार बनो बंदर

कर बद्ध किया हनुअभिवादन
कर रहा राम का हितसाधन

चुक जाये जब यह महाभार
मैं बन जाऊं तेरा आहार

मैं दृढ़ प्रतिज्ञ दे बचन रहा
क्रोधित सुरसा मुंह फाड़ कहा

मेरी करता जो अवहेलन
आज्ञा का करता उल्लंघन

वह नहीं रहे जीवित जग में
तुम ग्रास बनो मेरे मग में

जाने का अब कोई न यत्न
कर देखा कपि ने बहु प्रयत्न

सूझा विवेक तन विस्तृत कर
हल किया उसे मुख द्विगुणित कर

ज्यों ज्यों हनुमत तन था विशाल
सुरसा मुख तुलना में कराल

परिव्याप्त भूमि नभ दिग्दिगंत
फिर वदन हुआ विस्तृत अनंत

थल नहीं रहा ऐसा विशेष
कपि अनाहार्य रह जाये शेष

तन मसक तुल्य अति दिव्य वेष
कर गये तुरत मुख में प्रवेश

आश्चर्य चकित सुरसा महान
कपि रहा बुद्धि बल का निधान

कौशल विवेक धी धैर्य ज्ञान
जो इन गुण में पूरित महान

वह प्रति पग होता गया सफल
अभिलषित उसे हो प्राप्त सरल

सुर प्रेषित मैं इस कार्य हुई
अब दूत परीक्षा पूर्ण हुई

तुमसा न जगत में ज्ञानवान
बल बुद्धि अर्हतायें महान

तुम शीघ्र करोगे राम कार्य
सब युक्ति तुम्हारी अपरिहार्य

चल दिये विदा लेकर सवेग
भर दिया सिंहिका ने उद्वेग

छाया ग्राही बाधक जलचर
लघु कीटोपम लगता निशिचर

यद्यपि इसके वध में न श्रेय
पथ निष्कंटक करना है ध्येय

मग सत्य शिवम् कंटकाकीर्ण
प्रहरी लंकिनि को कर विदीर्ण

यह था बल का परिचय महान
फिर भी उर में किंचित न मान

पथ के बाधक वा मित्रतीन
या कहो देव माया प्रवीन

देते विराम द्रुत गति में ये
कर पूर्ण मान, भ्रम हरते ये

बस क्षणिक बात व्यवहार देख
निज कर्म कुशल है दूत लेख

करते सहाय तन पुलकित हो
यह सत माया या मित्र कहो

मैनाक सात्विकी थी माया
कपि ने जिसको समुचित पाया

इसलिये अतिथि को दिया मान
स्वीकारा और चले हनुमान

पटु कार्य कुशल वह दुर्निवार
दूरस्थ कुशल कह नमस्कार

धीरज विवेक के माप विन्दु
क्षण परिचय दे चलना अमंद

अपराध बोध तामस समान
वलमापन करता दे स्वप्राण

हित प्रद माया यह लक्ष्य बीच
वध योग्य उचित है परम नीच

राजस माया हित प्रद महान
लेती परिचय वल बुद्धि ज्ञान

वल इसका होता है भयकर
यदि दूत चले इसको जयकर

सब भेद खोलती गोपनीय
हो पूर्ण काज विश्वासनीय

बध इसका नहिं औचित्य पूर्ण
अधमरा छोड़ना न्याय पूर्ण

माया त्रय के व्यवहार भिन्न
हैं दौत्य कुशलता कर्मचिन्ह

दातव्य सिद्ध सोपान सफल
बन कठिन प्रश्न कर मार्ग सरल

हनुमत प्रज्ञा अन्तर्विवेक
पथ बाधा सुलझाती अनेक

मर्माहत कर लंका प्रहरी
छा गई निशा तंद्रा गहरी

सीता आकृति अब तक न बोध
व्यापक पुर में कैसे प्रशोध

बस एक मिला है मुझे चिन्ह
होंगी विरहातुर कृशा खिन्न

अविराम अश्रुलोचन निर्झर
पट वक्ष मलिन तन भी जर्जर

क्षीणाभवदन वेणी ललाम
वाणी उच्चारित राम राम

सहमी होंगी शिशुमृगी भाँति
लट होंगी ज्यों वट जटापाँति

ध्यानस्थ विकल, प्रभुपाद धाम
प्रहरी प्राणों का हुआ नाम

दूंगा जब मैं यह अभिज्ञान
कल्पित मेरा होगा प्रमाण
यदि उठा उसे भर अंक लिया
समझूंगा वामा राम सिया

हो दृढ़ प्रतिज्ञ विश्वास अचल
नयनों में देखी मूर्ति विरल
देखा रावण का अन्तःपुर
संगीत हो रहा मुखरित स्वर

बहु प्रमदायें थीं सुरामग्न
मदनाकुल लिपटी अर्द्ध नग्न
मणिदीप सुशोभित बहुल रंग
ले विविधकला उतरा अनंग

कामनियों के नूपुर रुनझुन
कटि किंकिणि क्वणित चला नर्त्तन
करती बहुमन रंजन विनोद
पुर में नित मदनोत्सव प्रमोद

नारी कुछ शिथिल श्रमित तन मन
विथुरी कवरी क्षतहार सुमन
ज्यों उतर गया मद विषम वाण
लेटी भरती हों घृणा प्राण

देखी अपहृत बहु कन्यायें
रोती भयभीता बालायें

तब पहुँचे रावण शयन कक्ष
देखा उसका वैभव प्रत्यक्ष

बहु द्रव्य सुवासित विविध रंग
सब मदन विलासिनि बहुल ढंग

किन्नरियों का नर्त्तन विलास
दे रहा सुराकर विविध लास

भर गई घ्रणा कपि दुखित हुये
हा ! नीच नर्क के दर्श किये

नहीं दृश्य दोष का आत्मभाव
जागृतन हुआ किंचित लगाव

मैं एक निष्ठ हूं ब्रह्मचर्य
वासना नहीं, क्या आश्चर्य

मैं राम दूत ममकर्म और
निर्लिप्त भाव हूं सभी ठौर

पुर अन्त.पुर देखा समग्र
सीता न मिली मन हुआ व्यग्र

कोई न युक्ति आरही काम
खिल रही इधर ऊषा ललाम

सुन पड़ी शंख ध्वनि रामस्वर
हर्षित हनुमान गये उस घर

कह राम राम कर अभिवादन
परिचय फिर दिया कुशल साधन

लग गये विभीषण मारुति उर
हर्षित अपार लोचन निर्झर

ले गये तुरत विश्राम कक्ष
निज हेतु कहा कपि ने प्रत्यक्ष

घटना क्रम आद्योपान्त कहा
सीता अनदेखी रही अहा !

हा दूत ! तुम्हारा यह प्रवेश
कर रहा मुझे ऐसा निदेश

हो गया निरंकुश राज्य कर्म
हैं उदासीन निज कृत्य धर्म

बढ़ जायेगा तस्कर अपार
पनपेगा तो फिर अनाचार

लंका प्रहरी से कर बचाव
आना दुष्कर कुछ भी बनाव

जागृत सशक्त प्रतिपल निमेष
हो गया तदपि चर का प्रवेश

रहते पग पग पर गुप्त दूत
अतितीक्ष्ण दृष्टि दीक्षा विभूत

ये बहु प्रसिद्ध निज कर्म कुशल
लंका रक्षित हैं इनके बल

गंभीर सिंधु परिखा गहरी
हैं धीर वीर इसके प्रहरी

अलखित बनभेदी रहा घूम
सब नगर सुरा में रहा झूम

शासनरत कर्मी उदासीन
सुन्दरी सुरा में सचिव लीन

सब राजधर्म होता विलीन
होगा तब यह अति शीघ्र क्षीण

गृह कलह छिड़ा सब ओर देश
अबलाओं के खिंच रहे केश

रहना मेरा रद बीच गिरा
विद्रोही कारावीच घिरा

इस पर भी मैं हूं बद्ध वचन
बस युक्ति कहूं सीता दर्शन

उनसे करलो तुम प्रथम बात
फिर रावण से भी मिलो तात

वाटी अशोक रक्षित प्रहरी
परिव्याप्त सिंधु खाई गहरी

पादप अशोक तर ध्यान लीन
बैठी सीता अतिमलिन दीन

रावण आता संध्यावकाश
हट जाते प्रहरी कर्म दास

कुछ घटी रात्रि बीती विशेष
हटता पहरा जानकी शेष

फिर अनिर्वाच्य विश्राम हुआ
उर किन्तु दर्श हित व्यथित हुआ

उपयुक्त समय तज दिया कक्ष
कपि चढ़ा वाटिका सघन वृक्ष

पहुँचे अशोक तरुवर विशाल
नीचे सीता बैठी विहाल

बहु निशिचरियों निशिचरों बीच
करता सम्भाषण परम नीच

तपसी अयोग्य पुनि श्रीविरक्त
सुन्दरि ! उससे हो अनासक्त

सुर असुर नाग गंधर्व जयी
कर रहा समर्पण भू विजयी

कंचन मृग में कितना कंचन
पुर स्वर्ण सृष्ट, चांदी रंच-न

लादूं कुवेर पर कर प्रहार
अर्पित कर दूं बहु चन्द्रहार

सीता ! अनिन्द्य सुन्दरि! लोचनि
वाणी तेरी बहु दुख मोचनि

धन अमित अतुल सुख भोगराज
दासी अनुचर सेवक समाज

आज्ञापालक कर स्वाधिकार
दे एक दृष्टि अपनी उदार

लंकेश ! गलित तव स्वाभिमान
नारी हर्त्ता वंचक महान

मेरा परिणय उद्घोषित था
दिग्विजय रूष उद्भाषित था

धनुभंजक धीर बीर विजयी
जानकी उसी की है प्रणयी

तब कहां गया ऐश्वर्य सर्व
कामी तेरा बल हुआ खर्व

झूंठा तेरा सुख भोग सार
कूकर सम क्या जल्पन असार

वीरोचित संस्कृत वरण करे
मेरा तू लम्पट हरण करे

देखा रावण कृत अभिभाषण
मासान्त करो स्वीकृत मारण

वंदिनि निरीह विरहिणि, अवला
पर कर प्रहार सम्मुख कठुला

पर्यंक मृत्यु पर ले विश्राम
हो अग्नि-सात मैं पाऊ राम

दुखिता करस्थ बैठी सशोक
बन रहा प्रवंचक क्यों अशोक

बहुस्फुलिंग ले प्रकट व्योम
तन झुलस रहा छू किरण सोम

तेरे अंचल में हैं अनेक
सकरुण मांगू में किन्तु एक

दुर्भाग्य करे जब प्रवल घोर
होता न सहायक कहीं जोर

भार्या होकर त्रयलोक वीर
परवशा पड़ी रोती अधीर

जब कुपित विधाता, नियति वाम
निजका सुर का बल दे न काम

देखा कपि ने सकरुण विचलित
अंगार मोम सा तन विगलित

अनुकूल समय का लिया ज्ञान
फेंका अलात सम अभिज्ञान

प्रतिक्रिया देखते रोम रोम
सुखदा औषधि होती विलोम

भवितव्य रहा कुछ और शेष
कहती सीता मुद्रिका देख

हा राम ! विजेता, अपौरुषेय
आस्थायें क्यों हो गई हेय

कंचन नारी का विकट लोभ
धोखा पाती फिर अंतक्षोभ

मृग छलना ने दे पति वियोग
उर में बैठाया कठिन सोग

मुदरी ! तेरी अभिलाषा क्या ?
राघव को तज कर आई क्या ?

सीता शोधन हित अभिज्ञान
लाया अनुचर मैं हनूमान

भू बानर का संगठन हुआ
लंका जयहित यह यजन हुआ

सुग्रीव बना सबका नायक
बध किया बालि का प्रभुसायक

मॉं! अब न हृदय को व्याकुल कर
ले जा सकता वध कर निशिचर

होगा तथापि यह चौर्य कर्म
आदेश न प्रभु का, न ही धर्म

बालक कपि क्या तेरे समान ?
निशिचर से लड़ने का स्वाभिमान

टिट्टिभ खग सम चापल्य सुलभ
क्या रोक सका पंजों पर नभ

शोकातुर उर का यह स्वभाव
होता न यकायक आत्मभाव

दूंगा निज वचनों का प्रमाण
अनुलेप बने दुख परित्राण

शर एक, करूँ दो लक्ष्य बेध
इनको प्रमाण, लंकेश खेद

फलभार झुके वाटिका रूख
अति पके गंध आ रही भूख

आज्ञा आज्ञा दो जननि शीघ्र
बानर स्वभाव हो रहा तीव्र

रक्षक इसके बहु भीमकाय
तू एक तदपि सुत निस्सहाय

मां मुझे न दे तू इसका भय
कह, चढ़े हिले तरु वेग प्रलय

फल खाकर तरु भी दिये फाड़
रक्षक भागे जब पड़ी मार

शासन बल बहुल किया खर्वित
बंधन गत होता कपि गर्वित

प्रस्तुत होते रावण समक्ष
हंता जीवित ममपूत अक्ष

रावन वाटी का कर उजार
फल हेतु किया इतना संहार

पर शासन फिर कानून भिन्न
चर मर्यादा भी हुई छिन्न

वंदिनि समीप क्यों गया चोर ?
किसकी आज्ञा अपराध घोर

परिचय दे तू अपना बानर !
किसके हित किया कर्म अनुचर

समवेत हुये जग भूप सर्व
सीता जय का ले बल सर्गव

जिसने सबका कर मर्दमान
गूंजा वैदेही विजय गान

निर्वासित हो करता स्वच्छंद
निर्भय रहते मुनि तपी वृंद

बध किया बालिका एकबान
चर उन्ही राम का हनूमान

भूखा था मैं अति तीव्र विकल
इसलिये खालिये सुन्दर फल

भूखे को क्या है दण्ड दोष
भूखा करता है क्रान्ति घोष

बानर स्वभाव तरु दिये फाड़
जिसने मारा वह दिये मार

फल खाना है यदि चौर्य कर्म
पर नारी लाना श्रेष्ठ धर्म ?

मैं चोर और लंकेश शाह
कितनी सराहनीय बुद्धि बाह !

सिखलाता कपि जो मुझे ज्ञान
वह पूर्व इसे भी लिया जान

उपदेश मुझे कर रहा आज
कल ही पीछे छोड़ा समाज

हित निज का और जाति जनका
जितना मेधावल खोज सका

उसका मैं ही दायित्व लिये
सत्कर्म या कि दुष्कर्म किये

निर्णय सत असत अपर का है
नर करता वह निज मति का है

सबके पीछे फिर प्रकृति मूल
जिसकी सत्ता में रहे झूल

तब अहंकार गुण बुद्धिज्ञान
सब में उसकी ठन रही ठान

कर सिया समर्पित जो पाऊं
का पुरुष विश्व में कहलाऊं

परनारी को देना ही है
गति निज को भी पाना ही है

तो क्यों न समर का साज धरूं
भागवत्ता से भी युद्ध करूं

मति भ्रम तुमको है हठधर्मी
यह मार्ग तुम्हारा दुष्कर्मी

संग्राम राम से करे क्षुद्र !
खग मुख भी क्या सोखे समुद्र

रे कपि बर्बर मरता वलात
छोटे मुँह करता बड़ी बात

हो गया निरुत्तर क्रोध गात
आदेश पूंछ हो अग्नि सात

उठ गये मरुत उनचास घूम
क्षण में लंका आच्छन्न धूम

ज्यों मेघ बीच दामिनि प्रकाश
घिर रही निशा संध्यावकाश

लांगूल ज्वलित यों ले विलास
जय केतु लहरता व्योम पास

किंवा प्रकटे बहु धूम केतु
प्राची सूचक हो नाश हेतु

सीता समक्ष आये गत श्रम
कुछ दो प्रमाण जाने का क्रम

पहले कहना गाथा जयंत
फिर जीवित हूं बस मास अंत

यह चूड़ामणि अंतिम प्रमाण
तुम भी जाते क्यों रहे प्राण

मैं परम उपकृता आंजनेय
तुम राम भक्ति में अनुपमेय

पंचत्व करें तुममें निवास
सब ऋद्धि सिद्धि दातव्य दास

किंचित न रहो अब उदासीन
मैं आर्य वियोगानलासीन

योजना काल पथ समारूढ़
धीरज विवेक खोते विमूढ़

गर्जित हर्षित हो सिंधु पार
मधुवन वाटी कर दी उजार

होते अकर्म्य जब कर्म सफल
तब ही इसके खाते हैं फल

हर्षित हो भेंटे राम अंक
गाथा सीता की कही लंक

बहु कठिन विपति सहरही अम्ब
अब उचित नहीं किंचित विलम्ब

अबला नारी पर यह प्रहार
सह लिया, बढ़े तो अनाचार

भावी संस्कृति का सुदृढ़ रूप
पड़कर दरार होगा विरूप

अनुशासन से हो जो विरुद्ध
तब न्याय पूर्ण है धर्म युद्ध

रण यात्रा का हो शुभ प्रयाण
उद्यत हों कपि यूथप प्रधान

उद्‌घोषण हो भू अंतरिक्ष
सागर आकर पथ दे प्रत्यक्ष

षष्ठ सर्ग

धर्म का यह संगठन है निखिल भू का
सत्यव्रत आरूढ़ रह व्रत पूर्ण करना
मनुज से पहली अपेक्षा है सभी की
जो उतर आया हृदय में पूर्ण करना

भावनात्मक योग का दीपक हृदय में
धर्म की लौ ले सदा जलता रहा है
जो गगनपथ को किये रहता प्रकाशित
मूल जीवन का मनुज पाता रहा है

आत्मगत बिश्वास युत साहस निरंतर
पल्लवित हो लक्ष्य पर आगे बढ़ाता
न्याय पथ अवलम्ब लेकर सत्य शोधन
धर्म शासन के सभी आयाम लाता

नियम संयम हीनता पर प्रखर अंकुश
एक व्रत पथ को सदा सुस्थिर बनाता
चपल जल्पन डिगन पर प्रतिबंध जैसा
अनल में श्रीखण्ड सम साहस दिलाता

मनुजता का सजग प्रहरी सर्वदा है
प्रेम अनुशासन परस्पर ऐक्य शिक्षक
एक दूजे को सिखाता स्वावलम्बन
श्रेय जीवन का सिखाता बन सुरक्षक

न्याय हित बलिदान का उत्साह चलता
परम सत्ता का निदेशन कर रहा है
शांति औ' सौहार्द्र की आधार रेखा
सुयश का प्रासाद जिस पर बन रहा है

क्षण नहीं अवशेष जीवन का कहीं भी
परम कोमल तंतु से जो निष्प्रभावित
जुड़गया तो अमरपथ का चिरपथिक बन
कीर्ति यश इतिहास धारा सत प्रवाहित

सेतु यह अध्यात्म भौतिक बीच का है
युग्म का संतुलन जीवन में बिठाये
परम भौतिक या परम दैवी जगत हो
एक सा आवरण में सबको छिपाये

धर्म के पथ विविध हैं अनुकूल गुण के
क्रिया कोई भी नहीं निष्फल निकलती
जो लगे हितप्रद सुखद निज पर सभी को
सहज में स्वीकार से अभिलषित मिलती

व्योम सम विस्तार में आच्छन्न रहता
बहुलता से व्यष्टि-गत तक उतर आता
बढ़ रहा परिवार, अंचल, ग्राम युग तक
भिन्नता में एकता का सूत्र लाता

क्षुद्र और महान दो समवेत चलते
अन्य में पलता प्रथम सम रूप होकर
मूल में रहता तथापि महान समरस
विविध रूपों में विभाजित ह्रस्व होकर

एक वह आता उतर कर बहुलता में
भिन्न नामों से उसे जाता पुकारा
जाति एवं वर्ण, युग से व्यक्ति में भी
सर्वदा आत्मस्थ रह बनता सहारा

व्यक्तिगत को जातिगत के क्रोड में रख
धर्म का अनुसरण होता ही रहेगा
यदि नहीं, तो जाति होती अस्तगामी
व्यक्तिगत अवकाश फिर क्या पा सकेगा

व्यक्ति से ही जाति और समाज बनता
और वह लघुतम इकाई देश की है
लघु स्वयं को पाल व्यापक में समर्पित
कर रहा सम्पूर्ण आशा शेष की है

वर्ण भी युग धर्म का अनुसरण करता
जो विकृत हो वर्ण तो युग धर्म जाता
तब नहीं अवशेष कोई भी रहेगा
निराधारित लोक भी सब छूट जाता

धर्म पारम्परित वन चलता जगत में
जन्म देकर पालता फिर मारता है
इस तरह वह नित्य नव प्रज्ज्वलति होकर
सृष्टि को अपनी कला में धारता है

धर्म का व्यवहार सम्यक रूप से हो
सतत साधन से हुआ प्रत्यक्ष भव को
नाम तब विज्ञान होता है उसी का
जो स्वचालित दे रहा कल्याण सब को

धर्म में विज्ञान में वैभिन्न्य कैसा ?
युगल आश्रित और सम्पूरक परस्पर
भेद युत होता अधूरा दृष्टि गोचर
धर्म वा विज्ञान देखा है विलग कर

परम दैवी व्यक्ति जिसको धर्म कहता
परम भौतिक के लिये विज्ञान है वह
किन्तु युग की धर्मिता है धर्म शीला
हीन होकर धर्म से अभिमान है वह

धर्मिता विज्ञान की कल्याणकारी
तन सुखादि न भोग कुछ विज्ञान संस्सृति
जो करे आनन्द का संचार उर में
परम सत्ता का बने सोपान संस्कृत

व्याप्त व्यापक सृष्टि में चर अचर में भी
निज कलाओं अंश से आच्छन्न रहकर
खोलता अज्ञानता के परुष बन्धन
साथ रहता धैर्य युत सम्मित बनकर

और सत विज्ञान का आश्रय दिलाकर
सृष्टि के सब छोर के तम खोल देता
पट उधड़ते अविश्वासों के निरंतर
जो न था अवलोक्य उसमें वास देता

विषमता में कंटकों की ढाल बनकर
कर्म के औचित्य का उपदेश देता
धर्म में अन्याय भ्रष्टों को न प्रश्रय
निर्णयात्मक बुद्धि को सन्तुलन देता

अस्तु धर्म महान है जीवन कवच
लोक यात्रा का सुलभ पाथेय भी है
तब नहीं अपराध पापों को कहीं थल
नित्त प्रणम्य समादरित श्रद्धेय भी है

धर्म का पथ किन्तु असि पर गमन जैसा
प्रथम साहस हो पथिक की योग्यता में
धैर्य और विवेक मिलकर सहज स्वीकृति
फिर न वंचित रह सके कुछ योग्यता में

धर्म फिर भी ज्ञेय है, अज्ञात सबको
मर्म और स्वरूप का अनुभव नहीं है
यह सदा एकाङ्ग में प्रस्तुत हुआ है
जो बताया है गया पूरा नहीं है

धर्म की सीमा सदा संकीर्ण करके
अज्ञता की वस्तु कह प्रेषित किया है
अन्य कहता है सदा इस धर्मिता ने
शांत नरता को विकल कर रण दिया है

प्रकृति जन्य स्वभाव वश गुण वृत्तियां
धर्म धारण की प्रथम आधार रेखा
व्यक्ति करता कार्य बस अनुरूप इनके
एक क्षण प्रच्छन्न इससे कुछ न देखा

निज स्वभाव समान मिलता कर्म जो भी
और पद की भी स्वयं कुछ योग्यता है
युग्म का निर्वाह हो आत्मानुशासित
इस तरह दायित्व देना धर्मिता है

व्यक्ति जो होता नियुक्त स्वकर्म जिसके
निर्वहन निष्पक्षता से सत्यता से
न्याय का संयोग हो गंभीरता से
ये परिधियां व्याप्त हैं सब धर्मिता से

धर्म पूजा विधि, प्रणाली भी नहीं है
मत प्रवर्त्तक भी अधूरे अंग इसके
सृष्टि के दोनों ध्रुवों का संतुलन है
प्राण है तो मृत्यु भी है संग इसके

यदि अहिंसा मूल इसका वर्म है तो,
सुखद कल के हेतु हिंसा भी मिलेगी
दु:ख-सुख, दिन-रात, ईश्वर वा अनीश्वर
युद्ध भी हैं शांति गाथा यदि मिलेगी

धर्म का ही नाम है सुगठित व्यवस्था
मनुज के कल्याण हित में अनवरतगति
चल रहा पारम्परित जीवन में सदा ही
लोक उर में रीति उत्सव बन समादृत

नव पुरातन मान्यता का वह न भेदक
सहज में कोई प्रथा स्वीकार कर लो
किंतु हो औचित्य उसमें कर्म गुण का
अपर की भी धर्मिता से मेल कर लो

धर्म वह है जो अपर को मोह लेता
वह नहीं जो बोझ या बाधक बना हो
सहज स्वीकृति की बने गतिशील धारा
जाति, वर्ग, समूह का साधक बना हो

धर्म के ही एक ध्रुव पर राजती है
परम शांति स्वरूप दुर्गा जग विधात्री
अपर ध्रुव पर किंतु काली मुण्ड माली
मृत्यु रूपा सत्य की शाश्वत जगन्मात्री

मूल जीवन का अहिंसा में सुसज्जित
किंतु हिंसा भी सजग रहती कहीं पर
जो बनाती है मनुजता को कलंकित
धर्म कहता है उन्हें मसलों वहीं पर

अहिंसा के एक पग का धर्म आधा
लोक के व्यवहार किन्तु विभिन्न बहुला
एक पथ के सब पथिक हों यह न सम्भव
प्रकृति बहु रूपी, लचीली, कटुक, मृदुला

धर्म जीवन मृत्यु में, पालन प्रलय में
बाह्य तल के सृष्टि क्रम में, काम में भी
व्याप्त है कृत कर्म में कर्त्तव्य बनकर
राम में, उतना प्रकट संग्राम में भी

युद्ध मानव प्रकृति में भीतर छिपा है
कर रहा संघर्ष जग निज प्रगति पथ पर
द्वंद्व से कि समूह से वह जूझता प्रतिदिन
धर्म उसके यंत्र को करता सुदृढ़ तर

सहज स्वीकृत हो गया जो निज हृदय को
त्वरित अंगीकृत करो यदि सुखद भावी
निखिल संसृति में मनुज अणुवत इकाई
एक विघटन में जगत होता प्रभावी

सृष्टि का व्यापार तक अवरूद्ध होता
शांत धारा अति विकल हल चल उठाती
धर्म उठता उस समय निर्मूल करने
दण्ड देता कुटिल को जो जीवघाती

मान्यता जो भी व्यवस्थित दीर्घगामी
न्याय व्रत पालन पुकारा धर्म जाता
परम सत्ता का सदा वाहन रहा है
गगन के उस पार का तम वेध जाता

धर्म मन का ही नहीं 'विश्वास' केवल
सौख्य तन के हेतु का विज्ञान भी है
देश कुल अनुसार पालन पुष्ट करना
यह बताना धर्म कर्मक ज्ञान भी है

जड़ कि चेतन प्रकृति जन्य वसुंधरा पर
दत्त निज गुण वृति से जो विरत कर्मी
विमुखता में त्रास पाता, सुख ग्रहण में
नियति का आदेश पालक है स्वधर्मी

नयन गोचर वस्तु हो कि अंवस्तु हो
वृत्तियों में नियत है आत्मा अनात्मा
धर्म उन सबकी विधायक सृष्टि बनता
सूत्र में आबद्ध है सब जीव, परमात्मा

धर्म सबके हैं सभी में धर्म बसता
जल पवन नभ अग्नि भू प्राणी चराचर
पय गरल पीयूष भेषजपट अशन भी
तरुलता घन तिमिर उडु विधु वा दिवाकर

धर्म शासक का, प्रजा का, देश का भी
लोक और समाज का परिवार का है
मित्र का वह शत्रु का प्रिय न्याय में भी
सुर-असुर का मनुज युग का काल का है

वर्ण आश्रम वृत्ति जाति समूह का है
कर्म गुण युत भाग का सुखभोग मे भी
काम तन धन धाम में ऐश्वर्य में भी
है प्रवृत्ति-निवृत्ति योग और वियोग में भी

धर्म आता है सदा संस्कार पथ पर
मनुजवय है प्रतिचरण में कर्म विविधा
संयमी जीवन उसे सम्पन्न करता
अभ्युदय का फल दिखाता, पुण्य शुभदा

धर्म है सन्मार्ग का उपदेश पहला
अनुगमन उसका नियम संयम हुये हैं
वय विशेष प्रवेश हित संस्कार मुख सम
धैर्य साहस उस क्रिया ने फल दिये हैं

धर्म के अनुरूप होती जो क्रियायें
शुभ फलित संस्कार का प्रतिरूप हैं वे
जाति का इतिहास पुंजी भूत होकर
गीत संस्कृति का अमर अनुभूत है वे

धर्म - संस्कृति परस्पर अन्योन्याश्रित
प्रथम है व्यवहार अपर इतिहास की गणना
बन रही है रीतियां निज धर्म हित में
मुकुर संस्कृति में सजाती रूप वह अपना

धर्म करुणा का महा उद्गम रहा है
पुरुष वर से उत्स इसका सतत बहता
दण्ड उत्तम नर कभी देता नही है
युद्ध में भी बस यही संचार रहता

क्रोध, विघटन गुण न पाले भागवत्ता
सृजन टांकी से सदैव तरासती है
हट गया सौन्दर्य रेखा से इतर जो
उस विकृति को मृदुलता से छांटती है

युद्ध भी उस विकृति का ही एक अवगुण
सृजक का सौन्दर्य खर्वित कर रहा है
भागवत्ता सह नहीं सकती विषमता
नाश का तमचिन्ह शोभा भर रहा है

सुर असुर वा जगत मानव एक ही है
धर्म व्रत गुण वृत्तियां करती विभाजन
क्रूर, हिंसारत, सहर्ष, कठोर भोगी
स्वहित धनहर्ता, प्रपीड़क असुर भाजन

सृजन इनका उस प्रकृति से हो रहा है
जो न जग में अखिल सत्ता मानती हैं
ऐन्द्रियादिक भोग सुख ही इष्ट उनका
वासना आराध्यदेवी एकबस पहचानती है

धर्म की करुणा प्रकृति में उतर आती
मन वचन सब कर्म बनते तदनुरूपक
नर जगत के द्वैत का संभ्रम मिटाकर
ज्ञान बल देता सदा साहाय्य रूपक

विप्र में करुणा वही बन सत्य शोधी
विरत हो सुख भोग से निष्कर्ष देता
शांति बल विज्ञान परहित की सुरक्षा
से बनाती जगत को वह ऊर्ध्वरेता

क्षत्रियों में शौर्य बन कर वह उतरती
युद्ध उसका धर्म प्रिय कर्त्तव्य बनता
धृष्ट, अन्यायी, कुटिल का नाश करके
दीन दुर्बल पीड़ितों का सेव्य वह बनता

तत्व इसका सूक्ष्म है अति गूढ़ भी है
नियम से इसका नहीं अनुबंध होता
या महाजन पंथ का जो न्याय समुचित
तो वहां निज देश अवसर काल का प्रतिबंध होता

धर्म की इदमित्थ धारा भी नहीं है
विप्र की प्रज्ञा उचित प्रामाण्य शीला
उचित अनुचित का समन्वय काल क्रम से
सर्व भूत हिताय हों निर्णय सुशीला

स्व-हित अथवा लाभ का हो प्रथम अर्पण
विष भरा यह घूंट पीता वीरवर जो
समय स्थिति वृति नरगुण समनुरूपित
धर्म का तत्वज्ञ होता धीर वर जो

गहन इसकी गति, परे मन बुद्धि वाणी
धर्म हित कृत कर्म फल विपरीत देगा
बन कहीं जाता अधर्मक धर्म किंवा
मूल इसका जान पाता विरल वेत्ता

धर्म और अधर्म काहो ज्ञान सम्यक
श्रेय पथ उसको सुगमकरता निरंतर
युग्म का व्यवहार पूर्ण विवेक से हो
स्वमत परमत पूर्वमत अनुसार निर्भर

क्षीण होता जा रहा हो युग सतत जो
काल परिवर्त्तन यवनिका डालता है
धर्म को अवकाश फिर रहना नहीं है
लोक भी फिर क्षीणता को पालता है

राम कार्यो के कुशल वाहक प्रमुख
हनुमान का भाषण कटक दल में निरंतर-
भर रहा उत्साह अविचल धैर्य निष्ठा
धर्म के प्रति,कर्म के प्रति समर के भी समानांतर

शब्द विद्युतवत प्रवाहित लहर जैसा
सैन्य दल श्रीराम जय उद्घोष करता
सिन्धु गर्जन सहमतो, मारुति वदन का
वचन निस्सृत सैन्य वीरोंमें समर उन्माद भरता

धर्म ही अवतार ले आया धरापर
और वह होकर सुलभ तुमको मिला है
भावना परहित स्वदेश स्वजाति हित की
श्रेय यशऐश्वर्य का पथ भी खुला है

ले विरक्ति विलासिता सुख भोग से जो
मार्ग निष्कंटक रहित भय कर रहा है
लोक भक्षक निशिचरों का बध स्वयं कर
भुज उठा रक्षा वचन भी दे रहा है

धर्म का प्रति रूप बन आया स्वयं जो
राम विग्रहवान भू पर धर्म बन कर
धर्म का अनुममन होता राम में ही
धर्म रमता विश्व में श्री राम बनकर

जो सुलभ प्रत्यक्ष उसका अनुगमन कर
धर्म की संस्थापना होगी धरा पर
प्रेरणा का स्रोतशाश्वत बह चलेगा
किम्पुरुष इतिहास भी होगा अमरवर

धर्म का स्वातंत्र्य देकर सार्वजन को
अभ्युदय का पूर्ण अवसर दे रहा है
कर रहा निर्भीक शासन दृढ़ व्यवस्थित
एक संस्कृति सेतु निर्मित कर रहा है

धर्म सेवा का बना हो सेव्य के प्रति
कर्म बल का भी नहीं अभिमान किंचित
राम का लवलेश बल पा हम अकिंचन
हो रहा रस से हमारा हृदय सिंचित

धर्म का एकत्व देता प्रबल सम्बल
एक हुंकृति में जलधि भी पथ बनाये
फिर असम्भव कार्य भी होगा न दुस्तर
दृढ़ प्रतिज्ञा में कहो बन सेतु जाये

सप्तम सर्ग

जलधि किनारे आया कपि दल
चला निरन्तर अभिमंत्रण
कुछ प्रधान यूथप सिखलाते
समर कला कौशल यंत्रण

सेना नायक प्रमुख यूथपति
नेता गण राघव के पास
तौल रहे थे सैन्य शक्ति को
सागर भी भरता निःश्वास

उधर लहरियां लहराती थी
कपिदल में भी हर्ष अपार
राम-लक्ष्मण के जयरव से
गगन वक्ष हो रहा विदार

भूमि प्रकम्पित हो जाती थी
होता समस्वर में हुंकार
व्योम वमन करता था प्रतिध्वनि
जैसे शेष करे फुंकार

जड़ चेतन का यह भीषण रव
शक्ति चुनौती लगा रहा
विजय हेतु प्रति पक्ष परस्पर
समर हेतु ललकार रहा

खरभर करते बानर दल को
सागर में खाने की चाह
एक दिवस को तृषातृप्तिहित
कटक करे पीने की चाह

है कठोर अनुशासन प्रभु का
अग्रिम कार्य न कर सकते
शत योजन क्या शत-शत सागर
हुंकृत भर में पट सकते

यहाँ राम परिवृत सुकंठ, युव-
राज ऋक्ष नल नील गवाक्ष
गोपनीय बन रही योजना
चरण चापते थेपिंगाक्ष

किन्तु वदन पर नहीं कुटिल सी
कोई रेखा का आभास
सिन्धु तरण चिंता का न विषय
चला परस्पर में परिहास

द्रुत गति से उतरा समीप तट
वायु यान रब भीषण है
घेरा कपि ने हुई सूचना
यह रिपु वन्धु विभीषण है

तुम्हे उचित सुग्रीव कहो क्या
बंधन हो निशिचर माया
सच है नीति विशारद तुम हो
अभी न यह अवसर आया

रावण बंधु शांत, शुचि, शीतल
आने दो अति स्वागत हो
यही सहायक मारुति का था
सम्भव है शरणागत हो

विचलित होते सुवन केसरी
अभिमत सुन सेनापति का
मेरा वचन विलोम हो रहा
हर्षित प्रण सुन रघुपति का

गिरता पद में त्राहिमाम कह
राघव ने भर अंक लिया
तुम्हें अभिलषित दूंगा प्रियवर
लंकेश्वर हित तिलक किया

विग्रह कर्त्ता रावण को मैं
निज पिता समान लेखता था
इस कुकृत्य में उसका सबका
मानव संहार देखता था

पुत्र, शुभी, मंत्री, कल्याणक,
सब उसको समझाता था
ललनाओं के अपहरण हेतु
बहु रक्तपात करवाता था

क्यों उपनिवेशवादी बनता है
बन्द करो यह अत्याचार
शक्ति जहाँ पर तुल जाती हो
आ जाता विनाश का द्वार

दम्भ युक्त अन्यायभोग में
विधि वरदान न टिक सकते
इष्ट पूज्य गुरु धर्म वेद भी
फल सत्कर्म न दे सकते

शक्ति प्राप्ति का दुरुपयोग यह
भौतिक सुख संचय करता
कामी पर पीडक हन्ता बन
अवलायें निसदिन हरता

कितनी ही कारा में बन्दी
अनशन रहती रोती हैं
कितनी लज्जा शीलायें नित
मृत्यु अंक में सोती है

रघुवंश वधू कन्या विदेह
सीता को हर कर लाया है
जिसके समीप कामी बनकर
वह कभी न जाने पाया है

विविध कला वा अंश भूत ले
सत्ता परम उतरती है
अभिमानी अत्याचारी का
नाश मनुज बन करती है

इतना समझाने पर उसने
  दे पद प्रहार अपमान किया
सचिव संग ले यहाँ आ गया
  मारुति ने भर अंक लिया

तीन दिवस से बैठ मांगता
  सागर किन्तु न देता राह
अब इसका शोषण करने की
  हृदय उठ रही गहरी चाह

जड़ क्या जाने आदर्शों को
  सदा प्रताडित फल देता
दण्ड उठा हो शक्तिपूर्ण तो
  अभिमत वह तत्क्षण देता

मंथन इसका हुआ पूर्व में
  सुन्दर रत्न उगल डाले
यह कह धनुकी प्रत्यंचा पर
  शर शोभित पावक वाले

राम अगर आदेश करें तो
यह सागर भी पट जाये
गिरि विशाल प्रस्तर खण्डों से
कहो सेतु भी घट जाये

नल नील विशेषक वास्तु कला
मारुति संग्राहक नेता थे
कार्य अग्रणी सबके प्रेरक
सुन्दर युक्ति प्रणेता थे

भूमण्डल के गुरु लघु प्रस्तर
संग्रह में दल निरत हुआ
योजना बीस प्रथम दिन का फल
देख पवन सुत दुखी हुआ

कार्य प्रगति अति मंथर है यह
योजना रूप अति द्रुत गति से
दिवस नहीं कुछ और शेष अब
शीघ्र बने यह हुकृति से

सेतु कार्य सम्पूर्ण हो गया
बानर शिखर नही लायें
करो प्रचारित रामाज्ञा को
सुनें वहीं वह रख आये

आंजनेय लाते थे गिरिवर
हर्षित थे सुन शुभ सन्देश
हुआ न राम पाद अभिवादन
बोला गिरवर, छोड़ा देश

वचन भ्रष्ट हो रहे पवन सुत
क्या कहकर तुम लाये थे
राम काज भी कर न सका कुछ
पितृगृह तज आये थे

अभिशापित करता हूँ तुमको
धैर्य अन्यथा कुछ दो तुम
क्या होगा ब्रज में अब मेरा
पड़ा रहूँ दोषी हो तुम

प्रभु आदेश इतर कुछ भी हो
मैं अन्यथा न बना सकता
दर्शन की अभिलाषा तेरी
हां पूरी करवा सकता

करूँ निवेदन, तेरे हित प्रभु
द्वापर में अवतार धरें
गोचारण में चरण शीश पर
इन्द्र कोप के हाथ धरें

बैठ यहीं पर करो प्रतीक्षा
चलता हूँ अब दे आदेश
किया राम पद में अभिवादन
बोले सेतु कार्य है शेष

वास्तु शांति शिव प्राण प्रतिष्ठा
लिंग स्थापन से होगा
विप्र बने आचार्य यजन का
सफल समापन से होगा

रावण का विप्रत्व आज यदि
राम हेतु जो जग जाये
कार्य शीघ्र सम्पूर्ण सरल हो
सम्भव स्वीकृत कर जाये

आंजनेय मम दूत परमप्रिय
आमंत्रण जा कर आयें
संस्थापन के हेतु अधूरे
जो भी हों सब भर आयें

करता कोई अपराध यहां
कोई बंधन तर होता है
सीता रावण द्वारा हरी गई
सागर प्रति वंधित होता है

संबंध आतताई से क्या
वह दुखदाई बन जाता है
मर्यादा च्युत होने का वह
अवसर सत्वर पा जाता है

मिलते ही सन्देश विप्र का
तीव्र भाव जग कर आया
किया सचिव परिषद अवहेलन
जनक सुता लेकर आया

रावण संग जानकी देखी
होता उत्तेजित कपि दल
किन्तु राम अनुशासन सुनकर
कर न सका कोई हलचल

किया समापन कर्म प्रतिष्ठा
राम विजय आशीष दिया
मेरे जीते जी नगरी में
पग न रखो यह मांग लिया

ब्रह्माभिधान से यदि आवेष्टित
समर क्षेत्र में आ जाना
वहाँ हाथ दो-दो हो जाये
तब सीता ले आ जाना

भार लिया याजमान कार्य का
सपत्नीक ही हो सकता
कर्म दोष से बच जाने का
अवसर कभी न खो सकता

रघुवंशी क्षत्री के सम्मुख
युद्ध चिनौती लगा रहा
अंगद ज्ञानी बलधीर कहो
क्यों विप्र द्रोह को जगा रहा

फिर भी नीति विशारद रावण
संधि शर्त स्वीकार करे
सीता ले वापस लौटू, क्यों
रक्तपात हो–समर टरे

मिला विपर्यय जो कुछ सोचा
युद्ध अयश्यम्भावी है
आंजनेय बोले राघव से
शांति न हुई प्रभावी है

अब विलम्ब किस हेतु हो रहा
करो समर का शीघ्र प्रयाण
मासान्तक सीता उद्धारण–
का चलने दो कपि अभियान

लंका करदूँ ध्वस्त अकेला
हो आदेश मुझे किंवा
कृशा, परवशा, प्राणकंठगत
निर्निमेष लोचन अम्बा

परम ऋणी मैं हनुमन तेरा
सुत उपकार न विस्मृत हो
मुझे मिल रहा तुमसे साहस
कहो बात ज्यों अमृत हो

बनो अमर आकाश तत्व तुम
अनपायनी मिलेगी भक्ति
ब्रह्मचर्य निष्ठावत तुमसे
पायेंगे तब सेवक शक्ति

हुआ समर का श्री गणेश फिर
उभय पक्ष ललकार रहा
युद्ध कला, धन शक्ति, सैन्य बल
विजय हेतु विस्तार रहा

शक्रजयी के शर प्रहार ने
वानर विचलित कर डाले
वीर घातिनी असि प्रयोग ने
रामानुज भी हन डाले

समर क्षेत्र से सैन्य शिविर तक
ले आये मारुत नन्दन
अनुज दशा गम्भीर देखर
व्याप्त हुआ करुणा क्रन्दन

समर याजन में लक्ष्मण तुमने
प्राणाहुति क्या दे डाली
सबके सुन्दर सुख भविष्यपर
काल यवनिका सी डाली

पटाक्षेप है वर्त्तमान का
तिमिर गर्भ में कल का द्वार
वचन प्रतिज्ञा रहे अधूरे
शत्रु पक्ष में हर्ष अपार

मेरे सब संकल्प अधूरे
आंजनेय फुर कर सकते
एक शेष क्या शत अशेष में
नव जीवन भी भर भकते

विधि का सब विधान कर दूँगा
मैं निरस्त क्षण भर में आज
यदि विरोध करता है कुछ भी
तो कलुषित कर दूँ यमराज

अन्य उपाय कहो यदि कोई
त्वरित कर्म को प्रस्तुत हूँ
अमृत चाहिये तो सुरपति से
लाने को मैं उद्यत हूँ

राज वैद्य लंका सुषेण, जो
भवन सहित उठ कर आये
बोले, सूर्योदय के पहले ही
हिमगिरि से संजीवनि ले आये

तो उपचार भले ही सम्भव
और नहीं कुछ आता काम
नहीं कार्य है दुस्तर कुछ भी
चले पवन सुत कह श्रीराम

बढे मार्ग निष्कंटक करते
मन में था उत्साह अपार
श्रेय प्राप्ति की क्षुद्र वासना
च्युत करती है धर्मक द्वार

साहस रग-रग से बह-बह कर
कहता शक्ति करे तब काम
प्रश्न न्याय के जीवन भरका
बिगड़ेगा जो हो विश्राम

औषधि से सर्वथा अपरिचित
ले चलता गिरि शृंग उपार
समर क्षेत्र है कभी किसी का
हो सकता इससे उपकार

बड़ा विडम्बन कर्म पथी का
भवितव्यत बन बाधक नायक
प्रश्न चिन्ह बन हुआ उपस्थित
भ्रम से भरा भरत का सायक

रोक सकेगा कौन उसे जो
उत्साही है परम प्रताप
बन्धु विरोधी बन प्रामाणिक
भरत कर रहे पश्चत्ताप

अनवसर प्रेमाश्वासन का है
कपि जाओ रवि की बेला
प्रतिक्षण वह सन्निकट आरही
यह कलंक मम सिर मेला

रवि की गति अवरुद्ध करूँगा
मार्ग बीच यदि निकल गया
खेल दिखाऊँगा पुनश्च यह
शिशु था तब ही निगल गया

नभ में सब निष्पलक देखते
मारुति की थी वाट अपार
कपि सशैल, कह राम उतरते
प्राण मिले होकर उपचार

कार्य असम्भव वा दुस्तर हों
मारुति द्वारा किये गये
शक्ति भक्ति सम्मिलित परीक्षा
में कंचन वत लिये गये

गुरु तर लघु तर कार्य मिला जो
किया नही किंचित अभिमान
राम कार्य है यहीं सोचकर
तत्पर रहते मुख अम्लान

राम लक्ष्मण अपहृत होकर
पहुँचे अहिरावण के राज
तंद्रावश वानर, पहरे पर
मारुति थे हो गया अकाज

कहो विभीषण अर्द्ध रात्रि में
तुम प्रवेश करने आये
संध्या वंदन का विलम्ब कह–
–कर, प्रवेश करने आये

विलग न था क्षण भर भी प्रभु से
कौन प्रवंचक बन आया
माया का सम्मोहन फेंका
कपिदल सजग न रह पाया

मेरी आकृति की अनुकृति तो
अहिरावण ही रख सकता
यह कुकृत्य उसका निश्चय है
अन्य सफल क्या हो सकता

वह शासक पातालपुरी का
आंजनेय सत्वर जाओ
मार्ग निदेशन तुम्हे दे रहा
वीर ! मुक्त कर ले आओ

मिला प्रथम प्रहरी मकरध्वज
द्वंद्व युद्ध वह लडा किये
बांध उसे अन्दर जा देखा
बलि तत्पर द्वय खड़े हुये

पदाघात से देवी भागी
स्वयं वहां पर गये पधार
भोज्य किया निश्शेष नगर का
खल उद्यत था ले तलवार

कौन सहायक तुम दोनों का
अंतिम संस्मृत करलो आज
वलि देकर निज इष्ट मात को
सफल करूंगा अब तो काज

सीता स्मृति का न सुअवसर
मुझे याद आते हनुमान
वही सहायक सदा रहे हैं
उनका परम ऋणी मैं राम

हनु, मारुति, वायुज, अंजनिसुत
इष्ट, सखा, सिय शोक विनाश
अनुज प्राणदा, अक्षनिपाती
सिंधु तरक, बली लंका त्रास

त्वरित महा विस्फोट भयंकर
रिपु दल वधिर चकित सा था
युगल बंधु संस्थित कंधे पर
कपि खल नाश निरत सा था

खोल दिये बंधन प्रहरी के
करबाया प्रभु से परिचय
शासनहित अभिषेक कर दिया
राज्य यहां का कर निर्भय

लोक तंत्र संस्थापन हित तू
सदा राम को संस्मृत कर
धर्म पथी अनुशासन प्रिय रह
सदा सत्य का ही अनुचर

विविध भाँति आशीष वचन कह
भक्ति शक्ति वरदान दिया
पलक झांपते सैन्य शिविर में
कह श्रीराम प्रवेश किया

समर हेतु लंकेश्वर आया
विप्र जान कर किया प्रणाम
उचित न था बध युद्ध चुनौती
किन्तु नहीं सह सकता राम

आंजनेय से द्वंद्व युद्ध है
मुष्टिक पर मुष्टिक आघात
भीषण रव परिव्याप्त व्योम में
चला परस्पर वज्राघात

रावण तू निज पूर्ण शक्ति से
कर मेरी छाती पर वार
सम्हल आरहा काल बना मैं
शेष रहा तो अधम प्रहार

मारुति मुष्टिक गिरा वज्र सम
रावण गिरता संज्ञाहीन
धन्य धन्य जननी कपि तेरी
बना आज मैं प्रज्ञाहीन

विधि वरदान बिरोधित होगा
नहीं अन्यथा हनन करूं
श्रेय मिले राघव को इसका
मैं ससैन्य ही हनन करूं

आज समापन हो जायेगा
सर्ग बद्ध तेरा जीवन
अवसर है अब भी यदि चाहे
क्षमा राम से, छोड़ो रन

अति ही दुर्बह अनुशासन में
चोरी का भाव पनपता है
यदि है स्वातंत्र्य विचारों में
आत्मा का भाव बदलता है

अष्टम सर्ग

समर जयहित चण्डिका का यजन चलता
विप्र पारंगत विपुल सम्पन्न रत थे
क्रोध में विकराल मुख दशग्रीव बैठा
प्रथम बोले, अन्य समस्वर उच्चरित थे

मंत्र स्वाहा संग थी आहुति रुधिर की
"जयतित्वं चामुण्ड मां भूतार्त्त हारिणि"
पक्ष में आकर कृपा बन काल रूपा
इस समर में विजय दे हे दुख निवारिणि

तृप्त कर दूँगा तृपा तेरी रुधिर से
क्षात्र अब मेरे हृदय का जग गया है
रामरिपु, दशग्रीव क्षत्री मांगता अब
विप्र रावण वचन देकर मर गया है

सफल होगा यजन यदि, बोला विभीषण
केसरी नन्दन ! विजय संदिग्ध होगी
परम शक्ति प्रसन्न होकर उतर आई
तो रहेंगे राम सीता चिरवियोगी

इसलिए हे ज्ञान वारिधि युक्ति खोजो
हो सके तो शीघ्र इसको विफल करिये
समय संकट का निबारो अतुल बलधर
राम को अति शीघ्र दुख से मुक्त करिये

अब न देवी आ सकेगी बंधु सुनलो
गुप्त यह इतिहास तुमसे रख लिया था
देखने सीता, गया जब वाटिका में
प्रथम ही चामुण्ड से जा मिल लिया था

जानकी अपहरण का वृत्तांत कह कर
युद्ध की सम्भावना पर बल दिया था
छोड़ यह मन्दिर, नगर लंकेश को जा
फिर न आने का वचन भी ले लिया था

जननि दुर्गा प्रकृति मूला जग विधात्री
भाव उर का देखती है वह निरंतर
संतुलित रखती तुला वत समविषम की
ब्रह्म की सहयोगिनी है वह अनंतर

विप्र बन कर आ गये मारूति यजन गृह
मंत्र का स्वर ध्यान से वह सुन रहे थे
युक्ति खोजी, फिर द्विजों के दास बनकर
कठिन सेवा से उन्हें मृदु कर रहे थे

विप्र-प्रमुदित थे परम सेवा निरखकर
कामना हो पूर्ण जो बर चाहते हो
हेतु अपना कुछ नहीं पूरा करूँगा
बचन देने का भरो यदि चाहते हो

चल रहा जो मंत्र उच्चारण निरंतर
जयति त्वं चामुण्ड मां भूतार्त्त हारिणि
'हां' न कह 'का' कह करा दो पूर्ण आहुति
इस तरह हारिणि बने भूतार्त्त कारिणि

यजन की आहुति करा दी पूर्ण कपि ने
देवि चामुण्डा विकृत मुख बोलती थी
जय पराजय में बदल जाये तुम्हारी
गुप्त इसके भेद को वह खोलती थी

वायु नंन्दन ने किया यह खेल सारा
राम के सेवक, परम रक्षक, सहायक
कौन है ? आदेश उनका टाल दे जो
शक्ति किसमें, क्रोध जो सह ले यकायक

सिद्धि दात्री देवियां जितनी जगत में
रुधिर हवि की तृप्ति हित अवतरित होती
तम प्रधान प्रवृत्ति उनकी सत न किंचित
अखिल सत्ता कर्म रत अनवरत होती

राम से ही विमुख तेरी विजय कैसी
अखिल लोक विरोध भी कैसे सहेगा
शक्तियां निरुपाय बन पद छोड़ जाती
बुद्धिभ्रमवश, अहं करने से मरेगा

गलित तेरा विप्र उर, ऐश्वर्य गर्हित
क्षात्र पथ लोकोपकारक भी नहीं था
शक्ति, सुर वरदान भी पाये यथोचित
लाभ अनुचित प्राप्त, भाजन भी नहीं था

मौन वाणी हो गई रावण चकित था
विप्र दल मोहित अवश था जग गया है
आ गया कैसे यहां हनुमान बानर
दृष्टिगत होता नहीं क्या उड़ गया है

तड़ित सम गर्जन भयंकर रूप लेकर
प्रकट थे मारुति सभी कुछ देखते थे
पंचमुख, भैरव, कराल विशाल तन में
वज्रसम नख दन्त आयुध लेखते थे

काल सम विकराल मुख ज्वाला उगलता
सृष्टि बहुधा नष्ट होती जा रही थी
प्रकटते बहु लोक सहसा डूब जाते
जन्म पालन प्रलय होती जा रही थी

अमित रावण देखता मुख में समाते
कीट सम अस्तित्व उनका गलित होता
रुधिर प्यासी शक्तियां आयुध लिए थी
मृत्यु जिह्वायें रुधिर प्रस्रवित होता

जननि दुर्गा चण्डिका शिव शक्ति देखी
जग शरणउदार करुणा वर्म भी था
बहुल घट सम टूटते ब्रह्माण्ड गोचर
काल दण्ड कराल युत यमधर्म भी था

देख मुख विकराल शंकित थे सभाजन
दहन लका याद कर कुछ भग रहे थे
नगर के भवितव्य में क्या शेष है अब ?
शांत हो शुभ वचन मारुति कह रहे थे

चुन लिया है मार्ग जो दशकण्ठ तुमने
वह अहंका जनक मति पर आवरण है
जग सृजक पालक हनक मिथ्याभिमानी
अखिल सत्ता का जहां परविस्मरण है

रामरोषानल प्रबल में कुल तुम्हारा
शलभ सम निर्मम ज्वलित विशेष होगा
छोड़ दो शठता न हठ अनुरूप तेरे
मृत्यु काल करस्थ सुख निश्शेष होगा

विश्व उस अखिलेश की आनंद परिणति
उठ रहे हैं भाव उसमें सहज पावन
किन्तु जो उसको रुलाता कष्ट देकर
कर्म उसका गुण बना फिर नाम रावण

सतत बहती धार को जो रोकता है
सृष्टि चालक उपकरण में रोध करता
अंश संयुत मनुज बन क्रीड़ा दिखाता
आतताई का निधन कर वोध भरता

खर्व तेरा ज्ञान शासन नीतियां सब
लोक का उपकार भी कुछ कर न पाया
ताड़तरु सम गर्व उन्नतक्षीण छाया
मदभरा फल भार से जो झुक न पाया

कालवस मतिभ्रम हुआ दशकंठ तुमको
रुग्णता उन्माद वश तुम बक रहे हो
वैद्य भेषज भी गरल लगती तुम्हें है
अहं के परहेज से भी बच रहे हो

कह रहे तुम सत्यबैसा वायु नन्दन
किन्तु सबसे मैं अपरिचित भी नहीं हूँ
युक्त और अयुक्त का करके विभाजन
विश्व का अनुभव किया है, शठ नहीं हूँ

पा गया अभिमत विविध विधि की कृपा से
कालगति से भी परे मैं चल रहा था
किन्तु हा दुर्भाग्य सब कुछ जानकर भी
अखिल सत्ता को न संस्मृत कर रहा था

मृत्य जय की लालस अति तीव्रवर थी
दांव पर निज मृत्यु को भी रख दिया था
शीश भी अर्पित किये इस हेतु मैंने
मुदित हो मृत्युंजयी ने वर दिया था

पंचभौतिक में घटक दस इन्द्रियों के
शीश दे प्रत्येक पर विजयी हुआ मैं
किन्तु एकादश रहा अनपूज्य मेरा
अहंकार विशेष जो भोगी हुआ मैं

देह में यह एक दशवां मन विलसता
क्रोधमोह अमर्ष विविधा नाम इसके
गति प्रबल विजयी प्रणेता अग्रणी है
बांध पाया कौन दुस्तर दाम इसके

संस्तवन दश रुद्र का करता अहर्निश
इष्ट थे कुलपूज्य प्रलयंकर हमारे
गुरु सदा साह्यय्य बन कर पक्ष में थे
इष्ट जननी प्रकृति थी मम पक्ष धारे

वह सविग्रह अवतरित सम्मुख नहीं क्या ?
जानता हूँ अंजनी सुत कौन होगा
पूज्य गुरू का अनपुजा क्रोधित हुआ तो
मृत्यु से वढ़ दण्ड भी अब कौन होगा ?

यह महा अपराध यद्यपि हो गया है
मैं तदपि निर्दोष इसमें दोष कैसा
कर चुका सर्वस्व अर्पण प्राप्त जितना
शेष कोई रह गया तो रोष कैसा

मैं उपस्थित दण्ड को, कायर नहीं हूँ
वीर व्रत धर मृत्यु का भी दान दूंगा
इस कुटिल मालिन्य से भी उऋण होकर
परम सत्ता में तिरोहित सा रहूंगा

तामसी तन भोग में अनुरक्त होकर
विष भरे घट में सुरा ज्यों मिल गई हो
पूर्वकृत ब्रत साधना से अब विरत हूं
अखिल की देहलीज जैसे खुल गई हो

जानकी को प्राप्ति आशा बलवती थी
मैं स्वयंवर में गया निरुपायसा था
जुड़ गई सीता वहां शिव के धनुष से
भंग हो गुरू का पिनाक, उपाय क्या था

जान गुरू अपमान छोड़ा वह स्वयंवर
बाहुबल को कोसता ही नगर आया
शक्ति संचय कर रहा इस हेतु केवल
मृत्यु भी स्वीकार कर यह समर लाया

छोड़ आया था परन्तु न ध्यान छोड़ा
विकल हो त्रय लोक में भी खोजता था
भोग नारी का मिले, देवी अगर है
तो मिलेगा अभिलषित जो देखता था

पा रहा था चिन्ह लेकिन प्रबल माया
प्रति चरण मुझको सशंकित कर रही थी
स्वर्ण का मृग भी निहारे योग माया
मैं उसे, वह भी मुझे बस छल रही थी

लक्ष्मण से सृजित रेखा तर न पाया
वीर वह योगी परम माया रहित था
कपट का व्यवहार वह करता नहीं है
सहज में ही क्रोध अन्तर शम रहित था

योजना मेरी सफल थी अपहरण की
नगर की दुर्भेद्य प्राचीरों में वन्दिनि
चाहता था दृष्टि पात कटाक्ष केवल
हेतु सब पूरे करेगी जनक नन्दिनि

दिग्विजय का दान उसके सैन में है
लोक पालक पद बसा उसकी प्रभा में
बिखर जाती ऋद्धि सिद्धि कृपावलोकन
निखिल का आनंद है उसकी विभा में

अजरता अमरत्व की सब लालसायें
चाहता था एक क्षण में प्राप्त करना
पूर्वकृत अभिशप्त जीवन की कलुषता
शांत होकर स्वप्न चाहूं आप्त करना

द्वेषदृष्टि न भूसुता की ओर मेरी
पूज्य गुरुवर मानते इष्ट जननी
दक्षजा दण्डित हुई रख रूप जिसका
मैं भला क्यों भोगता यह कष्ट करनी

देखता था कौन है वह जनक नन्दिनि
जो सती तन त्याग का कारण हुई थी
शैलजा बन शिव प्रिया थी, जानकी भी
राम परिणय हेतु अवतारण हुई थी

है वही तो मम मरण कारण बनेगी
और ले सामीप्य परमानंद लूँगा
शक्ति भर मैं देख लूं तब भी भला है
अन्यथा गुरूद्रोह का मैं दण्ड दूंगा

समर से भी पूर्व मैं आचार्य बन कर
'राम तेरी जय' प्रहर्षित वर दिया है
युद्ध की थी चाह जो होता रहा है
दक्षिणा में यह मुदित होकर लिया है

राम जीतेंगे मिलेगी जानकी भी
निज वचन को सत्य भी करना मुझे है
विप्र हूँ वरदान से क्यों मुकर जाऊं
धर्म रक्षण कर्म भी करना मुझे है

देव असुरों के समर होते रहे नित
दोष असुरों पर सदा ही मढ़ दिया है
न्याय की असमानता हमको मिली है
मांगता अधिकार निश्चय दृढ़ किया है

एक कश्यप जनक के सुर असुर बेटे
सम विभाजन भी नहीं वह कर सके हैं
भोग सुख ऐश्वर्य सब सुर पा गये थे
अमृत पाकर कर्मव्रत क्या कर सके है

सिंधु मंथन में मिले जो रत्न सुन्दर
गज रमा रम्भा सुरभिमणि देवपाते
विष दिया शिव को बने हो पक्षपाती
हम असुर के भाग्य में मदिरा बताते

अमृत वितरण में कपट व्यवहार देखा
अमरता की योग्यता क्या देव रखते
राहु ने दो बूंद छिप कर ले लिया तो
शिरोच्छेदन को सुदर्शन चक्र चलते

विबुध तब ही से बने बैरी हमारे
कार्य श्रम अधिकार सब कुछ था बरावर
शक्ति का तब संचयन करना उचित था
संगठित सुर कर रहे दुर्मति सरासर

इन्द्र सा ईर्ष्यालुभोगी रति विलासी
श्वान सम परहित नहीं वह देखता है
स्वर्ग या सुख भोग का एकाधिकारी
न्याय में भी छल प्रवंचन लेखता है

पुत्र ने जीता उन्हें कायर बनाया
इन्द्रजित पदवी उसे तब से मिली है
नगर भी दिग्पाल के सूने दिखे थे
स्वर्ग की गरिमा मुझे झरते मिली है

सक्र नित ही भोगता बहु अप्सरायें
वासना पूरी नहीं, तो छल बनाकर
ठग लिया ऋषि को निशाकर साथ मे था
पतिव्रता को भंग करता पति बताकर

तीव्र तप कर मांगते यदि अमरता हम
तो विबुध गण से हमें प्रतिद्वन्द्विता है
अमर उनका गुण बना, हम मरण धर्मा
असुर को बंधन, उन्हें स्वच्छन्दता है ?

उभर आई है कलुषता अब हृदय में
संधि पथ से आ गया हूं दूर इतना
शांति की आवाज होती निष्प्रभावी
बंधु तुमको दे दिया क्या और कहना

दुख नहीं परिवार जाति विनाश का भी
हर्ष इसका देव उतरा मारने को
मृत्यु भी इतिहास में बेजोड़ है यह
सेतु संस्मृति हित बनाया तारने को

राजनीतिक ज्ञान पाया प्रचुरता से
निज प्रजा पर न्याय वत शासन किया है
कर दिया सम्पन्न नगरी का निवासी
स्वर्ग की लंका प्रतिष्ठासन दिया है

जो नहीं असमानता व्यवहार्य होती
तो न निज कुल श्रेष्ठ को करता कलंकित
ऋषि पुलस्त्य महान यश धर थे पितामह
बिश्रवा मम जनक को रखता अशंकित

धनद मेरा ज्येष्ठ भ्राता देव सम था
मय रचित इस दिव्य पुर में रह रहा था
ऋण न देने पर उसे भी रौंद डाला
छीन पुष्पक यान, शासन कर रहा था

निज भुजावल पर किया था सर्व संचय
यह मृषा वाणी न कोरी जल्पना है
निखिलता में जीतकर सबला त्रिलोकी
एक रक्षक की हमारी सार्वभौमिक कल्पना है

समर में शुभ कौन किसका संधि कैसी
शक्ति से ही शक्ति का निर्णय हुआ है
अब भला उपदेश कैसा ? क्या समर्पण
मान्यता मिलती तभी जब रण हुआ है

मिल रहा था द्वन्द्व आमंत्रण परस्पर
उभयदल आयुध सहित संग्राम रत था
खींच लाये पवन सुत तव राम सम्मुख
मख किया विध्वंस रावण मानरत था

आज निर्णायक दिवस रण का विभीषण
केसरी नंदन समुत्तेजित महा है
खींच कर रावण किया सम्मुख हमारे
मारते दुष्टात्म समुपस्थित जहां हैं

अधिक यदि होगा विलंब न सह्य उनको
क्रोध सागर अग्निवत उमड़ा हृदय में
जानकी जीवन अवधि का दिवस अंतिम
विरहणी हित रोष घन उमड़ा निलय में

धन्य है मारुति तुम्हें हे ! अमित बलधर
क्रोध में भी भाव करुणा का लिये हो
राम सम्मुख कर दिया जिस पर कृपा की
मृत्यु में भी वधु को उपकृत किये हो

धन्य है दशशीश का संकल्प दृढ़ तर
मुक्ति पथ पर ला खड़ा जिसने किया है
सर्व अस्वीकृत किया अस्तित्व पर का
बढ़ गया साहस वहाँ बढ़ने दिया है

किन्तु मैं विधि को ग्रहण करता निरंतर
परम जीवन का सभी स्वीकृत हुआ है
लक्ष्य अंतिम ये तथापि समान दोनों
योग्य थे तुम प्राप्त जो तुमने किया है

कलुषतायें देह का संबंध रखतीं
मान वा अपमान मिथ्या धारणा है
आगये उस द्वार तक यह पग तुम्हारे
लौटना सम्भव नहीं धिक्कारना है

तदपि अनुचित मार्ग का अनुसरण करके
तुम स्वजीवन से निवृति ले जा रहे हो
हठ न कर श्रद्धा सहित यदि मांग लेते
कल्प तक सुख भोगते, अब क्या रहे हो

योग का सम्वहन अविरल हो गया है
क्षेम सद्भाजन नहीं तुम रह गये थे
युगल का निर्वहन करती परम सत्ता
अहं सागर में तिरोहित बह गये थे

अनधिकृत की प्राप्ति आशा बलवती थी
और अधिकृत को तिरस्कृत कर रहे थे
दो चरण आगे रहा भवितव्य नर का
सचिव दुर्मति भी न सद्मति दे रहे थे

नियति का आदेश अब स्वीकार्य होगा
अन्यथा उसका बिधान न हो सकेगा
सत्य जीवन का यही बस है अकेला
अमृत नाभी कुण्ड से क्या हो सकेगा

समर माया कुशलता निष्क्रिय हुये हैं
शार्ङ्गधर गुण पर सुशोभित तेजशर सब
इति हुआ सब हास, भोग विलास मदबल
गिर गये राघव चरण में देवगण सब

अंजनी नन्दन समुत्सुक सामने थे
जनकजा को अमृत मय सन्देश देने
त्वरित रामाज्ञा मिले मुख देखते वह
फिर न कोई आसके उपदेश देने

मम वचन से इतर और प्रतीति किसको
समर जय सन्देश यद्यपि प्राप्त होगा
नगर का क्रन्दन करुण नीरव सिसकियां
ध्वंस का अवशेष भी पर्याप्त होगा

समर श्रम जय हर्ष के अतिरेक में मिल
दे रहा उत्साह और प्रमोद तन में
किलकिलाकर चल दिये आदेश लेकर
उछल पहुँचे वायु नन्द अशोक वन में

मां प्रणाम, विराम रण, प्रभु राम विजयी
राज लंका का विभीषण पा रहे हैं
साथ ही शिविका सजी बहु दासियों युत
हो पदार्पण राम आज्ञा दे रहे हैं

पुत्र प्रत्युपकार में इस शुभ वचन के
क्या तुम्हें दूं, जो मिले, पूरा न होगा
ऋद्धि सिद्धि निधान तुम प्रिय राम सेवक
प्रमुख पार्षद आर्य का अजरायु होगा

रत्न बहु उपहार ले प्रस्तुत विभीषण
आ रही हनुमान आगे पालकी को—
रोक लो, श्री राम का आदेश आया
अग्निवत देनी परीक्षा जानकी को

क्या विडम्वन है तुम्हारी सृष्टि का विधि
सत्य को निर्मित कसौटी की गई है
अनृत रहता है सदा स्वच्छंद बन कर
स्वर्ण को पावक प्रताड़न दी गई है

चकित थे मारुति सुनी जब रामवाणी
मनुज लीला भी सदा रहती सशंकित ?
अग्नि अपना धर्म प्रशमित आज करले
सत्य अवला का हुआ तुमको समर्पित

पारहे बानर विदा सब यूथपति भी
अश्रुपूरित थे नयन सब विरह आतुर
प्रेम आश्वासन सभी को राम देते
विलग तुमसे क्यों ? बनाओ उर न कातर

अंजनी पति केसरी कर बद्ध बोले
पूर्व चलने के वचन भी यह मुझे दो
पुत्र को देखा न मां ने विगत वर्षों से
अनुज वामा संग तुम दर्शन मुझे दो

भरत सुस्मृति से व्यथित राजीव लोचन
बैठ पुष्पक यान में सब आ रहे थे
समर प्राङ्गण भी दिखाते जानकी को
रवि तनय हनुमान का यश गा रहे थे

विकृत शव बहु रुण्ड देखे अंग बिखरे
व्याप्त वातावरण में श्वासावरोधन
मृतक भोजी जीव सब आहार उन्मद
मौन मुखरित हो रहा सुन करुण क्रन्दन

देखते रणभूमि सब प्रस्थान उद्यत
राम जय रव गगन भेदी हो रहा था
अति पुलक तन हर्ष में भरकर विभीषण
रत्न पट भूषण विपुल बरसा रहा था

अनगिनत शव निशिचरों के राशिवत थे
पग न रखने को समर में भूमि भी थी
एक दिशि में नारियों को देखकर मृत
चकित राघव पूछते किसकी क्रिया थी

समर में इनको कभी मैंने न देखा
अस्त्र भी इन पर नहीं कोई चलाया
नारियों का मरण सम्भव कब हुआ फिर ?
हेतु क्या जिसके लिये यह कर दिखाया

पवन नन्दन जानकी सुध ला रहे जब
मार्ग में अति हर्ष से गर्जन किया था
अति भयातुर हो असंज्ञित नारियां बहु
मर गयी वह, भ्रूण उनका गिर गया था

समर की मारी नहीं अवला विचारी
पवन सुत की गर्जना पर भार इसका
'न कश्चिन्न पराध्यति' यह सूत्र देखो
मुक्त हैं कुछ ज्ञान भी उनको न इसका

जनकजा का तर्क सुन राघव मुदित थे
पुत्र पर अनुराग उनका अमितसा है
चल दिया पुष्पक अवध की ओर सत्वर
अनुज से अब मिलन का सद्भाव सा है

—○○—

नवम सर्ग

चल रहा आतुरता से यान
गगन में होता घर्घर नाद
तरुलता सरिता सब मिल संग
भर रहे थे उर में आह्लाद

सरित यों लगती थी रिझवार
नटी का उड़ता अंचल छोर
शैल माला तरु बूटे वेल
छींट से छापे हैं उस कोर

शालि की शस्य हरित परिधान
विलसता वक्षस्थल को घेर
लहरता ज्यों ही उठती श्वास
पवन पागल जब जाता छेड़

खिली कमलावलि सुमन विभिन्न
नायिका का सुन्दर गल हार
प्रकट करती थी कल कल हास
अधर फल विम्बा सम मधु प्यार

ललकती यौवन उन्मद भार
लताओं का विटपों से मेल
प्राण प्रिय था वसंत का साथ
लिपट रति मदन करें ज्यों केलि

विहँसते राघव लीला देख
काम सेना का विविध कलाप
दण्ड तेरे अब सबहै क्षीण
चढ़ेगा अब न तुम्हारा ताप

जानकी को इंगित कर राम
विरह में समर लड़े दिन रात
शस्त्र से लड़ कर रहता जीत
काम से जग-जग लड़ता प्रात

जलाया जिसने कल था प्राण
अनल सम दाहक थो जो बात
लग रही मुझको रुचि कर आज
प्रफुल्लित होता है मम गात

देखते ही पहचाना क्षेत्र
खेल करते थे शिशु हनुमान
सजग हो गई पूर्व की बात
विमल स्वर में बोले बलवान

यही है जन्म भूमि मम नाथ
वही है सरिता, सानु कुटीर
पिता के संग चुने थे कंद
मातृ ममता से हुये अधीर

उतरने को प्रेरित कर यान
एक घटिका भर का विश्राम
नयन का लाभ मिले सानंद
जननि भी दर्शन करे ललाम

पिता ने देखा है दिन रात
समर में लिया दर्श का लाभ
मात को करो न वंचित आज
कृपा की दृष्टि करो अमिताभ

भूमि तल देखा शैल समीप
उतरते अनुज सखा सियराम
देखकर जान गया कपि झुंड
विह्वल हो करते सभी प्रणाम

हुआ संदेश वहां तत्काल
वचन वश किया आगमन राम
अर्घ्य जल आसन पूजन थाल
लिए प्रस्तुत थे दम्पति धाम

हृदय में उमड़ा हर्ष अपार
तोड़ कर सीमायें विस्तार
नयन पथ से निर्झर अविराम
अतिथि पद में थी अर्पित धार

जनक जननी के पद अरविन्द
भूमि लुंठित होते हनुमान
बना मुझसे विस्मृति अपराध
क्षमा करने की कृपा महान

प्रेम जल से सब पूरित नैन
व्याप्त था वातावरण सनीर
उठाया अंजनि ने निज लाल
छलक आया अंचल में क्षीर

प्रसव मेरा है सफलीभूत
वेदना बनी सुहागिन आज
जननि का धन्य हुआ सुत भार
मान्यता मुझको मिली समाज

हो गया पावन परम सुधन्य
आज यह शिखर और ममधाम
कर रहा होगा ईर्ष्या इन्द्र
पधारे आज यहां श्रीराम

न स्वागत साधन मेरे पास
अकिंचन करन सके सत्कार
देव देवेश्वर के पद कंज,
दीन का सदा करें उपकार

मरुत ले मलय गंध को संग
प्रवाहित करता त्रिविध स्वरूप
अतिथियों का करता अभिषेक
पुत्र पर था अनुराग अनूप

पवन का पाकर तरु संसर्ग
गिराते थे नव सुमन अपार
नवागंतुक के स्वागत हेतु
दे रहे मृदुल अर्घ्यवत धार

नहीं था निरानंद बन प्रांत
मुदित गिरि के तरुलता प्रपात
हर्ष में करता जैसे नाद
परस कर धन्य हुआ सब गात

मेघ शावक बहु प्रस्तुत व्योम
दौड़ कर करते छाया दान
दिवाकर का था मंद प्रकाश
अतिथि का यों होता सम्मान

मेघ रवि में थी प्रशमन होड़
उभय में थी दर्शन की चाह
चल रहा आंख मिचौनी खेल
परस्पर में था तेज प्रवाह

कर रहे पद वंदन कपि मित्र
हर्ष युत पाते बहु आशीष
अमर बन रहो राम पद लीन
वरद कर मेरा तेरे शीश

किया फिर अभिवादन श्रीराम
जानकी ने भेंटा भर अंक
लक्ष्मण ने पद रज धर शीश
तुष्टि थी शीतल रश्मि मयंक

समर में जीता है दश शीश
तुम्हारे सुत का ले सहयोग
कर्म थे इनके अति विस्तीर्ण
देव का ऐसा था संयोग

शक्ति का आता है जब ध्यान
किया सागर लंघन तत्काल
दिखाया अमित पराक्रम बीर
समर में बने निशाचर काल

जानकी शोध, वाटिका ध्वंस
अक्ष का चूर्ण किया अभिमान
देखते रावण का दरबार
बँधे, कर ब्रह्म पाश सम्मान

सुने अंजनि ने सुत के कर्म
हृदय को मिला परम सन्तोष
किंतु भावुकता उर में बैठ
प्रकट करती दुखमय आक्रोश

हो गये लोचन भी अरुणाम
प्रखर था बाणी स्वर गंभीर
तुम्हारे रहते भी हनुमान।
समर में श्रमित हुये रघुवीर

एक क्या दस रावण के हेतु
बनाया था तुझको बलवीर
अकेला करता लंका नाश
पिलाया था तुझको वह क्षीर

उऋण हो गया जननि ऋण भार
दिया है तद्यपि मुझे कलंक
कराया तुझको वह पय पान
विन्दु से फट जाये गिरि अंक

मुझे आशा थी मेरा पुत्र
अकेला जीत सके त्रयलोक
किया तूने मेरा तप क्षीण
कर दिया मेरा हृदय सशोक

लक्ष्मण ने समझी अत्युक्ति
उच्चरित भावावेशी वोल
राम ने बरज दिया तत्काल
सती की शक्ति रहे क्यों तौल

बचन क्या देंगे कभी प्रतीति
नारियों के तप का आभास
समर में सुलोचना के साथ
किया था ऐसा ही उपहास

देख कर लक्ष्मण की अप्रतीति
छोड़ दी अंजनि ने पय धार
तड़ित सा गर्जन हुआ अघोर
फटा गिरि गहरी पड़ी दरार

क्षमा हो मां! बोले श्रीराम
विधाता का था यही विधान
मनुज कर से थी उसकी मृत्यु
प्राप्त था उसको यह वरदान

पालते थे मेरा आदेश
और सर्वत्र किया सम्मान
राम की कीर्ति बनेगी क्षीण
अन्यथा हन देते हनुमान

सत्य तो यह है, अंजनि नंद
बन गये मेरे पूरक अंग
प्रेम का कुछ ऐसा इतिहास
जुड़ गये वह जीवन के संग

समर में दिये अमित ऋण भार
लोक में गूंजा है यह गान
प्रमुख नायक मम कथा प्रसार
जहां है राम वहां हनुमान

किये सब मेरे दुस्तर कार्य
अनुपकृत नहीं एक क्षण याम
रहेंगे जहां जहां हनुमान
वहां पर प्रस्तुत सीताराम

हमारे जीवन का इतिहास
प्रमुख नायक है अंजनि लाल
राम की कविता मानस तीर
विचरते जैसे राज मराल

किये है मुझ पर जो उपकार
विनत इनके वश मेरा प्राण
समाया रहता हृदयागार
अनुग्रह का यह परम प्रमाण

लाभ दर्शन का ले विश्राम
चला अवधोन्मुख पुष्पक यान
त्रिवेणी पावन रूप अनूप
निमज्जन का चलता अभियान

राम बोले जाओ हनुमान
भरत को क्षेम सुनाना तात
चतुरता से उनके भी भाव
सुनाना मुझको भी सब बात

कार्य का मिलते ही आदेश
विप्र का लिया रूप तत्काल
अवधपुर देखा विकल वियोग
विरह वैश्वानर था विकराल

सांस संग चलती आंसू धार
गिरे ज्यों धुरबा संग फुहार
प्रेम में भीगे पवन कुमार
उमगते पहुंचे भरतागार

मौन होकर प्रकोष्ठ में बैठ
सुने अति तन्मय भरतोद्गार
भक्ति भ्रातत्व मिले समवेत
दर्श कर मारुति मुदित अपार

दिया है विधि ने कठिन वियोग
भोगता किसका पश्चात्ताप
निखिल में बना कलंकी आज
दिखाता कौन जन्म का पाप

शास्त्र पथ पर बन गया विराम
मान्यता हुई विखण्डित आज
लगाता प्रश्न चिन्ह इतिहास
निरुत्तर सम्मुख सकल समाज

हृदय की जानेगा अब कौन
जलाती है मुझको जो आग
चिता में जो कर देता दाह
न होता दुख अग्रज परित्याग

कसकता शूल मर्म में घोर
सूत्र सब अनुशासन के भंग
परस्पर कौन करे विश्वास
प्रवंचक यदि बनता निज अंग

हो गई परम्परायें भी क्षीण
उठ रहा मुखरितर स्वर विद्रोह
यही सीखेगा आगत विश्व
बन गया मैं प्रमाण निर्मोह

त्याग का इतना न था वियोग
पिता के स्वर्ग गगन का मूल
दिया अपयश का माहुर घोर
बन गया उनके पथ का शूल

बंध गये दो पुत्रों के मध्य
एक अनुपालक घाती एक
युगल के वचन बने परिपूर्ण
रखे थे संयम और विवेक

विधाता जो देखे मम कर्म
नहीं है अयुत जन्म निस्तार
प्रसवती कभी न चन्दन फूल
करे विष वेल गगन विस्तार

अवधि का दिवस रहा बस एक
शुभागम स्वामी का अभिराम
अन्यथा भरत अवधि में आज
लगेगा अंतिम कठिन विराम

दुखों पर दुःखों के संघात
सहेगा कैसे यह लघु प्राण
अकेला मैं अशक्त निरुपाय
उदधि में कहीं न पाता त्राण

बना हूं मूल बन गमन राम
इसी कारण भरता था आह
सुना फिर चित्रकूट मत पंच
जलाती वही भूल की दाह

लगा ज्यों हठ वश रोता बाल
मनाने हेतु खिलौने चार
दिखा कर मोह लिया तत्काल
उचित अनुचित करता स्वीकार

दिया था गुरु ने भी विश्वास
श्वसुर की रही सांत्वना संग
नहीं आता अब कोई काम
व्यवस्थायें सब होती भंग

सराहा गया मुझे बहु भांति
बुद्धि सागर सम कही अथाह
प्रशंसा थी बहलाना मात्र
स्वमत की तज आया मैं राह

पादुका बन सकती न प्रमाण
हृदय की मेरे निश्छल बात
लोक मत बना एक मत मौन
छिप गया न्यायालय का साथ

अभी तो ठहरा था शिशु हास
निकलते मुख से अस्फुट बोल
पिता का जाना नहीं दुलार
रहे हो कौन शक्ति पर तौल

दिवस थे अभी बाल चापल्य
मुखर होने को था कल हास
पुष्प सा खिला देखने विश्व
कि विधि ने दिया वज्र आभास

तात के अंक पाश में बैठ
धूसरित रहने की थी चाह
मांगता था दुलार कर फेर
दिखाया किन्तु समय यह आह

चल रहा कोमलता का गान
प्रभंजन आया यह विकराल
यकायक हुआ उपल आघात
पिस गया मंदर भार मराल

झौंक कर राष्ट्रद्रोह की आग
जलाया जबरन मेरा गात
किया जिस विमल बुद्धि ने न्याय
कौन प्रतिफलन लिये यह बात

कुशासन पर बैठा यह धीर
विलसता है गैरिक परिधान
जटायें उलझ गई इस भाँति
समस्या को न मिला सुनिदान

नयन उन्मीलित थे अरुणाभ
सतत बहती थी जिनमें धार
मौमवत शनै शनै तन क्षीण
उठ रहे झंझावात विचार

भाल गर्वोन्नत मुख उद्दीप्त
सत्य प्रतिभाषित होता आप
योग की फैल रही है कांति
अखिल अनमिल का पश्चात्ताप

विरह सागर होता निस्सीम
उठाता हहरा कर बहु ज्वार
भरत मन चंचल ज्यों मनुनाव
सृष्टि विघटन का था अधिभार

मिला हिमगिरि सा त्राणक ठौर
व्रणों पर शीतल सा अनुलेप
विप्रथा अनायास अवतीर्ण
विचारों में पड़ता विक्षेप

करो मम अभिवादन स्वीकार
सुनाता श्रवण सुधा संगीत
धन्य है राघव बंधु प्रतीति
लिया है राम हृदय भी जीत

विश्व पोषक पद जो आसीन
रमाये रोम रोम में राम
अवनि पर उतरा धर्म स्वरूप
अहर्निश लेते जिनका नाम

बना कर वन में पर्ण कुटीर
लिया था भवनों का आनंद
धन्य है बना राज प्रसाद–
–समूचा, योगकुटी सानंद

जिन्हें तुम याद करो दिन रात
नाम लेते जिनका अविराम
जीत रावण को कपि दल साथ
लखन सिय संग आ रहे राम

सुधा सम वृष्टि गिरा उच्चार
ब्रह्म वाणी सम स्वर गंभीर
भरत श्रवणों में वह अनुगूंज
निराशा तमस रही है चीर

तमस सागर में उपा प्रवेश
भरत मन मुदित विहँग ज्यों नीड़
मृतक को मिला अनाशा प्राण
विजय का घोष सुने रणधीर

हृदय में प्रेम ज्वार निस्सीम
चेतना सजग हुई झंकार
न सहसा होता था विश्वास
उठाई पलक दृष्टि थी चार

कौन तुम ? विरह सिंधु के तीर
छोड़ कर प्रिय संदेश की डोर
मृत्यु से बचा लिया, नवदान
हो गया उपकृत दोनों ओर

विप्र ! तुम करुणा शील उदार
अपरिचित होकर भी भगवान
करूंगा क्या मैं प्रत्युपकार
पूछता हूँ, तुम कौन महान

वचन मारुति के अमृत समान
बचाये हैं मेरे लघु गात
पुन: आने का दिया विचार
हुआ जब संजीवन आयात

अंग की अनुकृति बाह्य उदार
गिरा उच्चारण वही समान
वेष क्यों किया विप्र का दूत !
मुझे तुम लगते हो हनुमान

प्रभा सम्मुख न तमस को ठौर
सत्य का मिला नहीं उपमान
गुप्त कुछ उपजाता संदेह
मित्र ! भ्रम का अब करो निदान

लिया मारुति ने सौम्य स्वरूप
भरत ने भेंटा बाहु विशाल
युगल वर लोचन निर्झर अश्रु
पूछते कुशल प्रश्न बेहाल

उतर जाती जब गहरी प्रीति
छोड़ कर मन बुधि चित अभिमान
युगल वर विलग न रामस्वरूप
परस्पर पूछ रहे अनजान

राम का रहा नहीं क्षण एक
अनुज सुस्मृति से होता हीन
प्रशंसा अश्रु पूर्ण विस्तार
विमल वाणी भी बनती क्षीण

न तुमसे हो सकता हूं मुक्त
दिया है जो तुमने ऋण भार
समूचा शासन जिसमें दग्ध
लिया तुमने उसे उबार

दशम सर्ग

अवध शासन पर प्रतिष्ठित राम जब थे
शास्त्र सम्मत कार्य ही सावेश होता
वायु नन्दन कार्य कर्त्ता अग्रणी बन
पहुँच जाते थे प्रथम सत्वर जहां आदेश होता

राम के शुभ कार्य हित मालिन्न्य कैसा
वह प्रसन्न सदैव ही निज कार्य करते
प्रीति भाजन और प्रथम अनन्य सेवक
राम की आज्ञा यही आराधना में प्राण रहते

कार्य सेवा का मिले अवसर सभी को
बन गई इस हेतु सेवा सूचिका भी
राजनेता जानता था शक्ति सबकी
ध्यान रखता कार्य में अनुभूति का भी

वायु सुत सेवा रहित थे सूचिका में
इसलिए वह अधिक दिन तक चल न पाई
पूर्ववत् सब कार्य चलते थे निरंतर
दिग्विजय हित यजन की फिर बात आई

विविध देशाधिप निमंत्रण पा रहे थे
व्याप्त थी उद्‌घोषणा यह मेदिनी में
केन्द्र सत्ता अवध में रवि वंशियों की
व्याप्त सम्प्रभुता हुई मुझ में, धनी में

संघ भी यह मान्यता अति शीघ्र भेजें
जो नहीं स्वीकार तो यह अश्वथा—में
शक्ति परिचय में समर का यह निमंत्रण
समझकर तत्पर रहें अति शीघ्रता में

अश्व था शत्रुघ्न की अध्यक्षता में
विपुल भट संयुक्त सेना चल रही थी
वायु नन्दन की प्रमुखता में व्यवस्थित
विजय गर्वित नाद तूर्य उगल रही थी

हो रहे प्रस्थान को उद्यत सभी जन
कह रहे हनुमान से श्री राम सादर
सैन्य बल का भार तुम पर छोड़ता हूं
यह रहे अविजित तुम्हारी योग्यता पर

समर में मेरे सहायक जिस तरह थे
और जिस तल्लीनता से शत्रु जीता
बस उसी बल शौर्य का परिचय यहां है
सौंपता हूँ कुमुक दल में अति सप्रीता

तुम सुरक्षा कर रहे जिसकी अवनि पर
काल वा विकराल मय शिवशक्ति भी हों
फेर सकते हैं नही आज्ञा तुम्हारी
लोक पालक इन्द्र सम अव्यक्त भी हों

कार्य हो सम्पूर्ण रक्षा बन्धु की हो
प्रीतिमय विश्वास तुम में देखता हूँ
अन्य की यह योग्यता संदिग्ध होगी
अतुल बलधर ! इसलिये मैं भेजता हूँ

युद्ध, उत्सुकता, अडिगता, अभयता से
वीर, उन्मद धीर, भट गुण हैं तुम्हारे
विश्व जय हित प्रचुर तुम यद्यपि अकेले
कीर्ति धारक प्रिय अमर भाजन हमारे

तन हुआ पुलकित नयन में प्रेम जल भर
वायु नन्दन कह रहे थे, जिस हृदय में
राम हो विश्वास बनकर जब प्रतिष्ठित
वह रहे विजयी समर आसृष्टि लय में

वरद कर सिर फेर, दे आशीष भेजा
विषमता में जिस समय भी स्मृत करोगे
मैं सदा प्रस्तुत रहूंगा शक्ति लेकर
शत्रुशर निष्प्रभ, जहां हुंकृति भरोगे

अश्व का उन्मुक्त पथ था हर दिशा में
चल रहा पीछे कुमुक था दास बनकर
तदपि रोका भी गया, रणभी उपस्थित
किन्तु बढ़ते ही गये हनुमान बलधर

मार्ग में बहु शासनों के अतिथि भी थे
भूमि लुंठित आश्रमों के ऋषि चरण में
दे रहे उनको निमंत्रण मुदित मन से
विप्रवर निश्चित पधारें इस यजन में

ऋषि अरण्यक को मिला सादर निमंत्रण
चल दिये पैदल अवध को मुदित मन से
मुनि दशा पर दुखित हो हनुमान बोले
यदि कहो मैं भेज आऊं पथ गगन से

कुमुक था अक्षौहिणी यज्ञाश्व पीछे
नाद गर्वोन्नत तुमुल भरता गगन में
राष्ट्र नायक की उनीदी सजग तंद्रा
सद्य समुपस्थित समर्पण या किरण में

सरित शिप्रा तट पहुंच विश्राम होता
पथ अभी तक समर से हल हो रहा था
किन्तु कुछ अवसर सुलभ ऐसे हुये हैं
शस्त्र बल निष्प्रभ निरंतर हो रहा था

बीरमणि शासक प्रवल उस प्रांत का था
देवपुर उसकी सुदृढ़ थी राजधानी
आशुतोष कृपाल शिव उसके सुरक्षक
सजग प्रहरी थे नगर के शूल पाणी

सर्वदा अविजित रहा भूपति समर में
वेग सहसा सह न पाता वीर कोई
भक्त था शिव का मिला मृत्युंजयी वर
सैन्य में थी सजगता पल भर न सोई

राज्य सीमा में घुसा यज्ञाश्व ज्यों ही
वीरता को ज्यों चुनौती मिल रही हो
क्षत्रियों का धर्म जागृत शौर्य धारी
क्षात्र को जैसे परीक्षा मिल रही हो

अश्व के इस चलन में सन्देश जो, भी
दिग्जयी रणधीर ही उद्घोष करता
बहुल प्रभुसत्ता समर्पित एक में हो
केन्द्र शासित राज्य सब आधीन करता

बहुलता यदि एक धर्मी है, सुदृढ़ है
बहुल का अस्तित्व इससे त्राण पाता
भिन्नताओं की निरंकुशता निरंकुश
हो गई तो राष्ट्र बहु संत्रास पाता

शक्ति विश्रृंखलित होकर टूट जाती
अवध की आधीनता में पल रहेगी
बल अनिर्णित जो रहा तो समर करलो
राम की जयकीर्ति अम्बर थल रहेगी

क्षात्र की तेजस्विता प्रज्ज्वलित होती
धर्म, व्रत, संस्कार पूंजीभूत होकर–
प्रस्फुटित हो, अश्व को रोके खड़ा था
राज्य का युवराज समरारूढ़ होकर

रण तुमुल द्वय पक्ष के सुन सजग प्रतिभट
युद्ध में संलग्न साहस शौर्य बल से
पा रहे उनमें विपुल भट वीर गति को
कर रहे संघर्ष फिर भी राम दल से

अति पराक्रम कर रहे पुष्कल भरत सुत
वायु सुत ने बांध डाला भूप स्यंदन
ले उड़े आकाश में अति प्रबलता से
युद्ध को आवृत किये थे ज्यों प्रभंजन

देख नर संहार मूछित वीर मणि था
युद्ध में युवराज आहुति दे चुका है
मृत्यु वश मृत्युंजयी को याद करता
वचन तू मुझको समरजित दे चुका है

सगण प्रलयंकर उपस्थित थे समर में
घटित था विप्लव विकट संग्राम बनकर
बज्र सम आयुध बने नख दंत हनु के
डालते थे गुरु शिलायें खंड प्रस्तर

शिव त्रिशूल सम्हालते थे जिस दिशा में
राम दल बल विपुल खर्वित हो रहा था
वीरभद्र सकोप पुष्कल ओर दौड़े
पटकते वह तेज गर्हित हो रहा था

क्रोध वश शत्रुघ्न का कालास्त्र उठता
तब तलक मूर्छित त्रिशूलाघात उर में
देख यह संहार क्रुद्धित वायु नंदन
गरजते वह तीव्र वज्राघात स्वर में

तरु विशाल प्रहार से शिव विरथ होते
शीघ्र वृषभारूढ़ रण में उतर आये
गुरु शिला आघात से नन्दी भयातुर
देख हनुमत शौर्य शंकर चकमकाये

भक्त से ही भक्ति हठ कर बैठती जब
या कि गंगा मूल से ही लड़ रही हो
अंश का टकराव अंशी से जहाँ हो
शस्त्र क्या करता विषमता अड़ रही हो

शक्ति ही जब शक्ति का आह्वान करती
मूल ही झुककर वहाँ पर आ गया है
अमित श्रद्धा उपजती है उस हृदय में
भाव वश भगवान बंधन पा गया है

कह रहे शिव, अंजनी सुत ! बल तुम्हारा
अतुल है, अनुपम प्रशंसा योग्य कपिवर
मैं मुदित पुलकित न ऐसा और देखा
मांग लो वरदान अवसर योग्य रुचिकर

मुदित मन से दे रहे वरदान जो तुम
तो वचन दो हृदय से तत्क्षण करोगे
राम दल के वीर जो मूर्छित पड़े हैं
जब तलक मैं लौटता रक्षण करोगे

जा रहा हूं द्रोण गिरि संजीवनी हित
रिपु न इनकी समर मे कुछ हानि कर दें
आ रहा अविलम्ब मैं इस कठिन क्षण में
तब तलक रण में सुरक्षा आन भर दें

हो गये आश्वस्त सत्वर चल दिये थे
अचल पर जा देखते थे अमर बूटी
अब नहीं अज्ञानता पहले सरीखी
खोज लूंगा क्यों उखाड़ूं शिखर टूटी

लौट कर देखा समर पर पूर्ण यौवन
किन्तु शिव रक्षित युगल वर सो रहे थे
कर दिया उपचार उनका और सबका
जाग कर वह श्रमित से कुछ लग रहे थे

समर सागर टूट कर होता अपरिमित
राम जय रव सहित वायुज क्रोधरत थे
बाँध कर लांगूल में गण पटक डाले
रिपु विदारण में अतुल बल अनवरत थे

आंजनेय स्वरूप देखा शिव चकित थे
ध्यान करते राम का उर में निरंतर
धर्म संकट आ गया इसको निबारो
रुद्र ही दो भिड़ रहे रण में परस्पर

सृष्टि का अवसान मारुति कर रहे हैं
क्रोध पारावार ज्वाल उबालता है
शांत कर सकते इन्हें अब राम केवल
प्रकट होने की यहाँ अनिवार्यता है

कह रहे शिव से कि अब तुम लौट जाओ
राम से व्यवहार यह अत्यंत अनुचित
तुम सदा कहते रहे हो स्ववश उनके
क्या न इससे हो रही है भक्ति वंचित ?

राम का मैं दास जय का भार मुझ पर
युद्ध में प्रलयान्ततक लड़ता रहूंगा
कुशल इसमें है यहां क्षण भर न ठहरो
काल बनकर अन्यथा भिड़ता रहूंगा

भक्त का भी वचन मैं पूरा करूंगा
राम के यज्ञाश्व तक का अंग रक्षक–
–मैं रहूंगा, राम का सामीप्य देकर
वीर मणि से बद्ध हूं उसका सुरक्षक

यज्ञ दीक्षित वेष में थे राम सम्मुख
पवन सुत को अंक में भर शांत करते
फिर चतुर्भुज रूप का प्राकट्य लेकर
शिव हृदय में उतर कर संताप हरते

रण विरत सब वीर श्रम से रहित होते
भूप तेरा वचन पूरा हो गया है
राम से मांगो क्षमा हनुमान से भी
कह रहे शिव धर्म तेरा हो गया है

राष्ट्र नायक का प्रशासन सुदृढ़ होगा
राम में उसका विलय होना जरूरी
बोलता हनुमान मैं प्रिय रामसेवक
धर्म यश सम्पन्न, कर लो आश पूरी

रवि ध्वजा फहरा रही थी व्योम प्रान्तर
तुमुल भेरी ढोल के सब नाद मिलकर
लग रहा भूखण्ड में विस्फोट पर विस्फोट
अश्व आगे चल रहा था पूर्ण सजकर

दिग्विजय की बाहिनी बहु अवसरों पर
रुक रही ऋषि आश्रमों में अतिथि बनकर
लिये जाते वायु नन्दन कुशल पूर्वक
हो रहा अभियान पूरा भूभ्रमण कर

मार्ग में शिशु एक ने यज्ञाश्व पकड़ा
अंग रक्षक भी न कुछ कर पा रहे थे
जा रहा था जो जहाँ वह चकित होता
शिशु समझ कुछ भी प्रहार न ला रहे थे

जब हुआ परिवाद मारुति सोचते थे
दिग्जयी को एक बालक देखता है
कौन है वह ? क्या विलक्षण ? राम बोलो
उतर आया समर में क्या देवता है ?

पवनसुत ! यह खेल मैं दिखला रहा हूं
तुम न अपना तेज कोई प्रकट करना
अंश मेरा अवतरित है भूसुता की कोख से
भूजयी का अब मुझे अभिमान हरना

हेतु इस जय का तुम्हें सब विदित होगा
अनुज का भी भ्रम हटाये दे रहा हूं
मैं स्वयं सीता सहित उनमें बसा हूं
भेद यह तुमको बतायें दे रहा हूं

राम का यज्ञाश्व बालक बाँधता क्यों
दूध तक, के दांत भी धोये नहीं हैं
मानता हूं वीर तू मत समर हठकर
शिशु वयस के भाव भी खोये नही हैं

राम से क्या है प्रयोजन अश्व जानूं
ऋषि सुतों को राज्य से लेना न देना
हम निरंकुश भूप हैं निज आश्रमों के
क्रोध सह सकते नहीं यह जान लेना

समर शिक्षा के न तुम एकाधिकारी
शक्ति तुम में ही समाहित हो गई क्या ?
वह सदा निर्गत हुई इन ऋषि कुलों से
भूल से हमको चुनौती दे रही क्या ?

यह लिखा यज्ञाश्व पर जो बीर पकड़े
राम सेना से समर का ले निमंत्रण
कह रहा कुश वीर जो हो वह छुड़ा ले
हो गया इस अश्व पर मेरा नियंत्रण

समर का अति शीघ्र वह आदेश देते
वार पर प्रति वार करते जा रहे थे
शिशु सजग था हस्त लाघव कुशल रण-
धर, अस्त्र रिपु के शीघ्र कटते जा रहे थे

जो गया वह बद्ध वा मूर्छित गिरा है
राघवानुज लक्ष्मण व्याकुल हुये हैं
चुप रहे सुग्रीव मारुति की दशा पर
वह स्वयं निष्क्रिय विफलता वश हुये हैं

प्रात वेला में सुमन का संचयन कर
कुश न लौटा अब तलक मन खिन्न सीता
पीट दूंगी बहुत उच्छृंखल हुआ है
खेल को तज एक क्षण क्या भिन्न बीता

आ गया लेकर वहाँ दो वीर बानर
मित्र पीछे किलकते ताली बजाकर
एक भैया के लिये मां एक मुझको
मैं नचाऊंगा इन्हें डाली सजाकर

ढीठ इनको छोड़ दे क्यों ला रहा है
नित्य ही अपवाद के तू काम करता
और भी तो बहुत से मुर्छित पड़े है
अश्व लेना था न रण का काम करता

अश्व इनका है तदपि मैं पकड़ लाया
क्योंकि अंकित शब्द शर ने बेध डाला
राम के यज्ञाश्व के, लो कुमुक आई
आ गये सविरोध सबको छेद डाला

चक्रवर्ती भूप की उद्घोषणा पढ़
चकित सीता हो गई प्रभु याद आये
फिर निहारा कपि युगल जिस ओर बंधित
पूर्व संस्मृति के पटल सविषाद आये

जानकी मां चरण में कपि दण्डवत थे
पाद वन्दन हो रहा वह हाथ फेरे
पुत्र मेरे तुम कहां पर भटक आये
बार बार अधीर हो हनुमान टेरे

मात सुत का देख सम्मेलन चकित शिशु
शिथिल बंधन कर निहारे कौन वानर
देख कर मां विकल होती पुत्र कहती
प्रेम करुणा का बहाते प्रेम सागर

पुत्र ! ये अग्रज तुम्हारे तात सेवक
नाम है हनुमान औ सुग्रीव इनका
तदपि प्यारे मुझे अंजनि तनय ही
भूल मैं सकती नहीं सत शील इनका

पूज्य तेरे तात है त्रैलोक वंदित
अश्व मेधादिक यजन वह कर रहे हैं
उचित तुमको हैं नहीं यह बाज बंधन
पितु विरोधी पुत्र क्या जय कर रहे हैं

पितृ सम शत्रुघ्न को कर चरण वन्दन
धृष्टता की मांग लो इनसे क्षमा तुम
पुनर्जीवन दो समूचे कटक दल को
जान लो इतिहास करके याचना तुम

पवन नन्दन पाश में आवद्ध आये
धन्य उनका कृत्य मै भी धन्यभागी
आज दर्शन हो रहा वाल्मीकि बोले
कौन उनसा वीरवर है अन्य, त्यागी

काव्य के मेरे यही हैं पीठ नायक
अमित बल के गीत जिनके लिख चुका हूँ
शिशु चपल से खेलकर बँध भी गये हैं
भेद है कुछ बुद्धि पट पर लिख चुका हूँ

एक दिन विश्राम में बैठे पवन सुत
राम गाथा याद आई गिरि शिला पर-
-वज्र नख से टांक दी सम्पूर्ण कविता
मूर्तिवत सौंदर्य उनका कुल मिलाकर

मैं महर्षि तथापि ईर्ष्या थी हृदय में
लिख चुके हैं पवनसुत जो अमर गाथा
कौन पूछेगा मुझे इस काव्य सम्मुख
श्रम निरर्थक लग रहा कुछ व्यथित सा था

दीन बन कर पहुँचता तब वायु सुत पर
निज रचित राघव चरित पढ़कर सुनाया
अति सराहा किन्तु मेरा स्वार्थ बोला
तव महाकाव्यांकलन में यह न आया

ऋषि प्रवर कविता तुम्हारी अमर होगी
प्रथम कवि सम्बोध भी तुमको मिलेगा
निज रचित गाथा शिलायें सिंधु तल में
धन्य मारुति आपका दर्शन मिलेगा

मिल रहे वाल्मीकि प्राचेतस पवन सुत
आतिथेयी अतिथि स्वागत में लगे थे
ऋषि, कुशी-लव सहित साश्रम अवध आयें
यज्ञ आमंत्रण निमंत्रण में लगे थे

जानकी भी पवन सुत से बात करती
पुत्र ! यह रघुवीर का कैसा यजन है ?
स्वामित्यक्ता में यहां, यह भेद कैसा
कर रहा नव विधि यहां कैसा सृजन है ?

मां न इसका भेद मैं कुछ जानता हूँ
ज्ञात लीला की भला महिमा कहां फिर
जान ले भवितव्य अपना हो मनुज यदि
ईश के अस्तित्व की गरिमा कहां फिर

माँ पिता के मध्य का मतभेद उनका
शिशु भला क्या जान सकता, क्या कहेगा
मैं इसे बस खेल प्रभु का जानता हूँ
सह नहीं अभिमान सकता क्या रहेगा

दिग्जयी सेना विजित शिशु से हुई है
दर्प को निर्मूल वह करता रहा है
भेद इसका ऋषि प्रवर सब जानते हैं
विधि, नियम, मत आपसे बनता रहा है

अश्वमेधादिक यजन यह दिग्विजय सब
जानकी परित्याग के हैं कार्य जितने
एक कारण में बंधे, वाल्मीकि बोले
खोलता हूँ तथ्य सब व्यवहार्य जितने

विजय कर लंकेश पर लौटे सियावर
कीर्ति गाथा वीरता से चल रही थी
सासुयें सम्मिलित होकर जानकी से
विविध अनुभव तिक्त मीठे चख रही थी

गर्भ के लक्षण उभर कर आ गये थे
हृदय रंजन हेतु मिलना नित्य होता
और गाथा पंचवट पर पहुँचती है
निशिचरों की याद, मुखमालिन्य होता

ध्यान रावण का हुआ उनको यकायक
नाम उसका याद कर चुपने लगी थी
थी उदासी अधर सूखे कम्प उर में
सोचकर विकरालता कपने लगी थी

राम ने देखा यकायक जानकी को
भय हृदय में व्याप्त रावण का अभी भी
कुल सहित संहार करके विजय पाई
वह सजग इनके निलय में हैं अभी भी

अंशजों में यह सदा भय भीति देगा
और संतति नाम से कायर बनेगी
इसलिए उपचार इसका परम वांछित
कल करूँगा मंत्रणा अविदित रहेगी

मैं वशिष्ठादिक प्रवर ऋषि सोच बोले
राजनीतिक रूप से परित्याग कर दो
भेज दो वाल्मीकि आश्रम जानकी को
और मुनि संतान में तुम ओजभर दो

आज उसकी भी परीक्षा हो गई है
राम गाथा के कुशी लव कुशल गायक
इसलिये हनुमान वह कविता अमर है
जिस किसी इतिहास के तुम–राम नायक

एकादश सर्ग

राम रवि व्यापक व्योम अनंत
अहर्निश रहता उदित प्रकाश
कमल तुम प्रमुदित हो सब काल
देखते अपलक बनकर दास

दिवस का जहाँ नहीं अवसान
कंजवत प्रमुदित कीर्ति तड़ाग
गिरा है आभूषण गुणगान
भ्रमर बन गुंजित करते बाग

उपासक पर हो परम कृपालु
आर्त्तरक्षण का गुरुतर भार
क्रूर पापी मारक ग्रह यहां
क्लेश दायक बनते, अनुदार

त्याग कर नैसर्गिक निज दृष्टि
सौम्य बन जाते या कि तटस्थ
पक्षधर जिसके बनते आप
मृदुल फल होता सद्य करस्थ

सूर्यसुत का हरते अभिमान
बनाना जिसका विकल स्वभाव
भूल जाता है अपना द्वार
नाम का ऐसा विकट प्रभाव

आगमन होता शनि का जान
बाँध कर कहा विकट लांगूल
रहूँ मैं जहाँ कि मेरा नाम
वचन दे, वहाँ न जाये भूल

पिण्ड ग्रह उपग्रह केतु अनेक
भयातुर से चलते चुपचाप
बदल देता निज गति पवमान
शीघ्र लेते हो सबको नाप

सुदर्शन चक्र ताप विकराल
क्षणक में देता जग संत्रास
आप में उसका तेज विलीन
शीघ्र कर लिया वदन का ग्रास

सेव्य की कीर्ति पराक्रम आयु
बृद्धि हित तुम रहते तैयार
सदा ही करते वही उपाय
कार्य गुरू-लघु का नहीं विचार

जनकजा दिया भाल सिन्दूर
दर्श कर पाया मात अशीष
अज्ञ बन पूछ लिया हनुमान
हेतु क्या ? अरुण किया जो शीश

आयु में होगी प्रभु की वृद्धि
चरण रज का प्रतीक अरुणाभ
सदा प्रमुदित रहते हैं देव
अभिलषित का मिलता वरलाभ

देख कर अवसर अति अनुकूल
सेव्य प्रमुदित का सरलोद्योग
इष्ट का जीवन बने चिरायु
क्यों न मैं भी यह करूँ प्रयोग

प्रीति का सागर अगम अथाह
नहीं कुछ करता सोच विचार
उलट जाता विवाद का पोत
ज्ञान भी हो जाता निस्सार

प्रेय का प्रिय ही रखते शेष
एक उनका ही रहता ध्यान
पोत कर तेल और सिन्दूर
तन–वदन में आये श्रीमान

स्वयं का अहं हो गया शून्य
कर्मफल अर्पित हैं प्रभुपाद
मिले सुख स्वामी को जिसभांति
वही करते हो तुम अप्रमाद

राम मुख दृष्टा दास अनन्य
अंक में धारण पद अरविन्द
अहर्निश कोष बीच निर्द्वन्द
मधुप सम पीते हो मकरन्द

समर्पित जीवन का प्रतिश्वांस
राम का रोमरोम में नाम
राम से शून्य त्रिलोकी राज
नहीं दो कौड़ी का भी धाम

कथन को करते हो प्रत्यक्ष
वचन अनुरूप हुये हैं कर्म
जहाँ बनती प्रतीत-अप्रतीत
अनावृत करते उसका मर्म

मुदित होकर सीतावर राम
तुम्हें पहनाते उर में माल
निछावर एक एक पर राज्य
पिरोये नग, मणि, हीर, प्रवाल

बनी थी माता कृपा प्रतीत
अमित अनुकम्पा थी साकार
हुआ ज्यों मूर्तिवंत वात्सल्य
भक्ति प्रमुदित थी वक्षागार

हर्ष का भाव न था परिलक्ष
वदन पर उठते नहीं विचार
ध्यान से देख रहे अविराम
न सम्मोहन था नहीं विकार

अभिलषित का पाया न स्वरूप
खोज देखी मणियां प्रत्येक
वज्र दंतों से उनको तोड़—
—तोड़ कर फेंकी गई अनेक

देह जीवी थे सचमुख क्रुद्ध
न जाने मर्कट भूषण स्वाद
पूछते, क्या देखो हनुमान
दिग्दिशा से उठते परिवाद

इसलिये तोड़े थे बहुरत्न
न दिखते जिसमें सीताराम
व्यर्थ है मुझको तन निस्सार
इष्ट का यदि न हृदय में धाम

मुखर था अविश्वास रत्रघोर
क्षुभित थे अन्तर्मन हनुमान
बज्र नख से कर दिया विदीर्ण
चीर डाला निज वक्ष महान

प्रकट परिलक्षित सीताराम
व्याप्त था रविप्रकाश उर व्योम
लग रहा शीतल सा अनुलेप
किरन वरदान जानकी सोम

हो गयें नतमस्तक सब लोग
देख कर अतुल पराक्रम वीर
प्रीति का अनुकरणीय प्रभाव
धन्य है ध्येय बने रघुवीर

न्याय का पक्ष लिया सब ठौर
अनृत का किया सदा संहार
सहायक होते तन मन प्राण
विजय का देते हो उपहार

श्रेय सब पाते हैं तव दास
कठिन उनका श्रम करते आप
सदा निर्लिप्ति भाव संलग्न
शक्ति देते रहते चुप चाप

कृपा जिस पर होती क्षण एक
वरद कर पा जाता जो भक्त
न अवगुण का रखते हो ध्यान
क्षमा कर देते तुम अनुरक्त

महाभारत का था आरम्भ
मित्रता चाह रहा था पार्थ
अचल युत विग्रह लिया विशाल
शीर्ष रथ पर बैठे निःस्वार्थ

मित्रता का ऐसा निर्बाह
फाल्गुन सखा बन गया नाम
शक्ति साहस दिव्यास्त्र महान
नियोजित अर्जुन में निष्काम

भीम था अनुज, वायु का पुत्र
वीर्य बल विक्रम का भण्डार
सदा रक्षण करते थे आप
बना था उसका हृदयागार

पकड़ कर दुश्शासन रण बीच
भीम जब चीर रहा था वक्ष
पियूंगा अभी लहू दो घूंट
बचाये कौन वीर ? युग पक्ष

तप्त लोहित सा निखरा गात
क्रोधरत नयन विकल अंगार
किया गर्जन रिपुदल भयभीत
लगा ज्यों काल किये श्रृंगार

तिलमिलाया अर्जुन का क्षत्रित्व
भीम की सुनी चुनौती घोर
कृष्ण ने बरज दिया चुपचाप
मृत्यु छेड़ो न अनोखी जोर

भीम में उतरे अंजनि लाल
काल का है भैरव आवास
सृष्टि भी ले यदि रिपु का पक्ष
निमिष में होगा उसका नाश

दिखाया दिव्य चक्षु दे रूप
क्रोध रत काल रूप हनुमान
उगलते ज्वाला मृत्यु स्वरूप
सहमता अर्जुन कीट समान

भीम का गर्हित कर अभिमान
बचाये प्राण किया परित्राण
यक्षवन गमन रोक सस्वरूप
सुनाया चतुर्युगी परिमाण

हृदय में सदा बैठते संग
तिमिर में ले प्रकाश की ओर
बिडम्बन में सौभाग्य उतार
मिलाते भू दिगंत के छोर

ब्रह्म के मूर्त्त रूप हैं आप
गिरा में उसका सतत प्रवाह
उलझते जहाँ सभी सनकादि
तुम्ही से वे पाते हैं थाह

न साहस जुटा सके अनुजादि
राम से प्रश्न करेगा कौन
भरत के बन जाते तुम माध्य
रहे वह संकोची वश मौन

सृष्टि के दग्ध हेतु प्रलयाग्नि
डुबाने को तुम सिंधु महान
लोक के पालन मारण हेतु
टिकेगा कौन ? जहाँ हनुमान

पराक्रम पौरुष प्रगति प्रचंड
भक्ति के तुम आदर्श अनन्य
विश्व बल दृढ़ता से सम्पन्न
नाम है आंजनेय का धन्य

भार लेने में बढ़ कर शेष
क्षमा में अचला सम गंभीर
वेग में वैनतेय गति क्षीण
समर में पावक सम रणधीर

हृदय में सागर सम वात्सल्य
अनुग्रह में तुम गगन विशाल
धैर्य में हिम गिरि सम गुरु भार
क्रोध में ज्वाला मुखी कराल

दीन पर हिम जैसा अनुलेप
दान में कल्पवृक्ष भी क्षीण
तुम्हारा विग्रह परम स्वरूप
धर्म की परिभाषा है पीन

राम में रमता है यह विश्व
विश्व भी एक रूप है राम
त्वरित संचालित करते आप
राम का काम विश्व का काम

भृष्ट अन्यायी बन दशशीश
खींचता सीता संस्कृति केश
धर्म भी बन जाता निरुपाय
कार्य में नहीं लगाते लेश

देव गुण से भी परम उदार
कर्म का देते हो उपदेश
विधाता से बढ़ कर चातुर्य
सृष्टि का हर लेते हो क्लेश

विष्णु सम पालक प्रकट प्रताप
प्रभाकर का निस्तेज प्रकाश
शंभु का प्रलयंकर आभास
शक्र से बढ़ ऐश्वर्य विलास

ऋद्धियों के तुम उद्गम मूल
सिद्धि का सतत प्रवाहित स्रोत
बुद्धि बल के अपार भंडार
ब्रह्म चारी गुण ओत प्रोत

विविध विद्या के पारावार
खेचरी-भूचर में निष्णात
नृत्य संगीत मुखर दिनरात
बने आचार्य प्रथम प्रख्यात

तुम्हारा दर्शन ही सुखमूल
अविद्या का कर देता नाश
कलायें मूर्तिमती हो स्वयं
दिखाती पथ में परमप्रकाश

विलसते पंच तत्व में आप
सभी का तुम में है आधान
ब्रह्म में जीव हुए इक सार
कर्म का पहने हो परिधान

राम का रूप गगन विस्तार
उसी में तुम विचरो सानंद
चुका क्या मूल्य किया उपकार
तत्व बन बसा वही आनन्द

भूमिजा शक्ति रूप भू तत्व
कृपा बन आवेष्टित अविराम
किया भी दिया अमृत मय पान
बिराजी रहती हैं उर धाम

जगत आधार शेष जल तत्व
दिया उसको भी जीवन दान
स्रोत बन सतत प्रवाहित गात
किया लक्ष्मण ने निज आधान

वायु का विग्रह परम अनूप
तनय में वहीं अंश विस्तार
विराजा तत्व रूप में पूर्ण
पिता का पाया अमित दुलार

भरत ने सौंपा पावक तत्व
विरह बन कर जो था साकार
किया था प्रशमित उसका ज्वार
पान कर वह भी लिया उतार

कर्म का सम्यक ज्ञान यथेष्ट
उचित अनुचित में युक्त विहार
देश क्षण अवसर के अनुरूप
सर्वदा होता है व्यवहार

भूमि जल पावक नभ में सदा
रही है गति निर्वाध अपार
वायु से बढ़ अप्रतिहत चाल
कहीं भी रुक न सके व्यापार

क्रोध में ग्रह चालन हो बन्द
विश्व जीवन में लगे विराम
क्षमा में भी अशेष में शेष
मृतक को नव जीवन विश्राम

प्रणव का पूर्ण प्राप्त सम्मान
परस्पर का सुन्दर आवास
प्रथम द्वय त्रय चतुरक्षर रूप
मंत्र का सम्यक ज्ञानाभास

सेव्य को उर पिंजर में बांध
चढाते नवधाओं की धार
समर्पण का देते नैवेद्य
अश्रु मणि का पहराते हार

वेद का उद्घाटन दिन रात
निदर्शन श्रुति का तव व्यवहार
ओम अक्षर का अनुपम ध्यान
सरल करते दुष्कृत व्यापार

शास्त्र पथ में जिनने प्रभविष्णु
लोक विद्या में भी परिपूर्ण
व्याकरण के निर्णायक मान्य
नीति के राज मार्ग विस्तीर्ण

अंजनी गर्भ सिंधु के इन्दु
केसरी वन मृगराज किशोर
प्रवल खन तमहित ज्ञान प्रभांशु
तृप्ति हो साधक नयन चकोर

महा सागर जैसा अस्तित्व
जगत है उसकी लहर समान
भूल है इसकी शावक भांति
पिता सम विस्मृत करते ध्यान

व्योम सम है विस्तार अनंत
जगत उसमें परमाणु समान
असम्भव में सम्भव को लेख
सुयश का बुनते सरल वितान

न्याय का रूप सत्य का संग
उसी को देते हो अनुदान
एक क्षण को भी जो भ्रूपात
विधाता का हो भ्रमित विधान

योग आयातित दिन रात
क्षेम करता है सतत विकास
नित्य नव अभिनव का विज्ञान
हृदय में रहता है सविलास

शक्ति के मान्य प्रथम आचार्य
वीर्य बल विक्रम सिंधु अपार
वज्र सम अंग बने वज्राङ्ग
बनाते याचक उसी प्रकार

शक्ति जब युग की होती क्षीण
न साहस का रहता जब लेश
मान्यता कल्पित और उधार
भूल कर बैठा हो निज वेश

सजाते विमल बुद्धि का द्वार
बना कर गुण को वन्दन वार
वटुक को देते विद्या दान
साधकों के करते उपकार

पराक्रम होता संचित आप
हो गये विस्थापित जिस ठौर
आत्म बल और सहज विश्वास
खोलता तम बंधन के छोर

काल गति रुद्ध, पराक्रम मंद
जहां पर शक्र शक्ति निस्सार
पलायन करे धनद जिस ठोर
वहाँ पर करो गरज हुंकार

दृष्टि में वसी अमृत की वृष्टि
वरद कर में तुम परम विशाल
सुदर्शन का भी हतप्रभ तेज
दण्ड में यम से भी विकराल

नयन कोरों में करुणा विन्दु
आर्त्त हित बहते हैं अविराम
महा महिमा की अविरल धार
कलुष धोकर देती विश्राम

विभा तुमसे होती विस्तीर्ण
प्रभा के तुम अविचल मार्त्तण्ड
सिखाते अनुसाशन आयाम
अनृत ईंधन हित अनल प्रचंड

उपासक हित के मुक्त कपाट
सर्वदा दीक्षित पतितोद्धार
बनाते उसका निर्मल गेह
दुराशा से जो ग्रसित अपार

महिम की महिमा परम महान
अघट में सुघटन का संयोग
अनाशा में आशा का संचार
मृतक को सुर पुर जैसा भोग

वाटिका रामायण के भृंग
अहर्निश करते गुण मधुपान
सलिल चन्दन जैसा संयोग
परस्पर अन्योन्याश्रित मान

चंद्रिका देती विधु आभास
उषा से होता रवि का बोध
राम के तुम वैसे प्रति मान
कथा का तुमसे होता शोध

दक्षता, धैर्य, प्राज्ञता, नीति
शौर्य, बल, सम्भाषण चातुर्य
एक निष्ठा, गुण गण के आप
प्रति स्थापक हो पडित वर्य

देह की आभा कमल समान
खिली प्राची में उषा ललाम
तप्त लोहित सा करे प्रकाश
मेरु सिन्दूरी, हो, अभिराम

विधाता की प्रपंच मय सृष्टि
द्वैत भावों से ओत प्रोत
दुख-सुख, हास-रुदन, भव-मृत्यु
सृजन, परिवर्तन, तम-उद्योत

काल क्रम के वश अणु परमाणु
बसा है जग में योग वियोग
मोह छल दम्भ द्वेष पाखंड
राग वैराग्य और बहु रोग

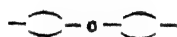
तुम्हारा विग्रह है निर्लिप्त
निष्प्रभावी विधि नियम विधान
एक रस एक रूप एकत्व
अहर्निश रहते हो अम्लान

न कोई मोह सका है मोह
अनृत की नहीं कभी भी आस
सत्य में विचरण कर चिरकाल
वासना नहीं रही है पास

अवस्था क्रम से रहित अनूप
जरा मृत देह धर्म अपवाद
मरण, मोहन उच्चाटन क्षीण
क्रोध, जड़ता नहि लेश प्रमाद

राम का होता जब अवतार
विलग तुमसे न रहे क्षण एक
गूंजते है नभ में जय गान
विकीरित करते कल्प अनेक

मिला है राम कृपा आदेश
रहें भू पर जब तक गुणगान
यहाँ तब तक विचरो सानंद
अमर बन कर संदेह हनुमान



उपसंहार

१

समर सागर था अगम अथाह
मिल गया जब उससे उपराम
प्रश्न की तीव्र लालसा देख
पूछते मारुति से श्रीराम

२

अर्द्ध नारीश्वर वामा संग
योग माया राधा घनश्याम
स्वयं मैं सीता राम प्रफुल्ल
तुम्हारे उर बसते अविराम

३

लालसा कौन रही सविशेष
भक्ति पथ के तुम पथिक महान
कृपा मेरी तुम पर अविराम
विश्व को दोगे जीवन दान

४

देव सब ऋद्धि सिद्धि समवेत
उतर जायें उस हृदयागार
करोगे कृपा दृष्टि जिस ओर
स्वयं मैं उस पर रहूँ उदार

५

तुम्हारी गति अप्रतिहत स्वयं
अखिल ब्रह्मांडों में गति चार
तपस्थल तीर्थ बने वह ठौर
जहाँ पर चरण करें संचार

६

देख कर राघब प्रीति अपार
मुदित मन ही मन मर्कट राज
भ्रमण की उत्कंठा है तीव्र
मिले प्रभु का अनुशासन आज

७

पूछने का अब क्या है काम
खुले सब आज्ञाओं के द्वार
पूर्ति बस एक रही अवशेष
उसे भी तुम करलो साभार

८

नियोजित तुम में हैं सब देव
नहीं गणपति का है आधान
ऋद्धि सिधि सहित उतारो उन्हें
करो आवाहन पूजन ध्यान

९

हो गये हनुमत लोचन बंद
मंत्र का करते अजपा जाप
समाहित सपत्नीक गणराज
देखते सब लीला चुपचाप

१०

शुण्डि जौ भर थी बाहर शेष
भेंटती कमल राम को एक
बन गया आशीर्वाद स्वरूप
पवन सुत को वरदान अनेक

११

भ्रमण का शुभारंभ अभिराम
हिमालय की उपत्यका ओर
सुनी ध्वनि नारायण श्रीराम
मधुर वीणा की थी झंकोर

१२

बना नारद मारुति संयोग
युगल भक्तों को दर्शन लाभ
परस्पर अभिवादन सम्मान
कुशलता कृपा कही अमिताभ

१३

स्वर्ग सुख से बढ़कर आनंद
दे रहा मुझको यह सतसंग
श्राप गति आज पा रही मोक्ष
चलूंगा गुरु मारुति के संग

१४

पुलस्त्य आश्रम था थोड़ी दूर
उमड़ता नारद आता प्रेम
पहुंचते कर पूजा सम्मान
पूछते मुनिवर सादर क्षेम

१५

चकित थे मारुति पा सम्मान
न आशा इस सहृदयता की थी
पूछते मुनिवर, क्यों हनुमान
बात कुछ कौतूहल की थी

१६

प्रश्न करना चाहूं मुनि नाथ
हृदय में रहा मुझे झकझोर
कहो तो पूछूं, कहा पुलस्त्य
तुम्हें सब ज्ञात नियति के छोर

१७

राम के तुम अनन्य हो दास
कहां मै विधि का मानस पुत्र
मनुज मेधा बल से मैं युक्त
आपकी गति जाये सर्वत्र

१८

आपको कौन कर सका तुष्ट
न जाने प्रश्न करो किस भाँति
कहूंगा फिर भी जितना ज्ञान
स्यात मिल जाये तुम्हें प्रशांति

१९

आपके पौत्र प्रपौत्रों संग
राम का समर हुआ विख्यात
आपके अंशज वंशज का
किया था मैंने ही संघात

२०

वंश घाती मैं यहां समक्ष
न फिर भी कोई कहीं विकार
अपितु पाता तुमसे सम्मान
क्यों नहीं बने तनिक अनुदार

२१

आपका प्रश्न बड़ा हैं गूढ
न समुचित उत्तर मेरे पास
पिता श्री पर है पूरा मर्म
करो आवाहन हित उपवास

२२

मीलित लोचन पद्मासनस्थ
मौनावाहन मंत्रोच्चारण था
सहसा नभ में कमलासनस्थ
विधि का दर्शन सुमधुर स्वर था

२३

पाद्यार्घ्य प्राप्त सोडष प्रकार
आसन विधिवत विधि प्राप्त किया
अभिवादन कर अभिवादन ले
प्रमुदित सुस्थिर मन प्रश्न किया

२४

कहो मानस पुत्रों क्या ध्येय
हमारे आवाहन का मूल
रखा नारद पुलस्त्य का पक्ष
प्रश्न वायुज का मनोनुकूल

२५

विधाता पुत्र पुलस्त्य महान
तपस्वी त्रिकालज्ञ विज्ञान
तदपि कुल का क्यों हुआ विनाश
विनाशक का करते सम्मान

२६

प्रश्न के तन्तु बहुत विस्तार
हुआ दो अनमिल वंशों का मेल
एक तपलीन सदाशय, अपर
महत्वाकांक्षाओं का खेल

२७

भूमि असमय हठात धर बीज
प्रसवती विषमय विटप अनेक
ह्रास पा जाता धर्मोद्यान
चले प्रति शोध एक पर एक

२८

यही दिति का कश्यप के संग
अदिति से कर बैठी अभिमान
केकमी वही कर चुकी भूल
नाश का मिलता उसे प्रमाण

२९

गौतमी रही विश्रवा संग
प्रसवती वह कुबेर सा पूत
वही था अदिति शील संयोग
धर्म उससे होता अनुस्यूत

३०

विकृति विषमय बढ़ विश्वोद्यान
सृजक की तब चलती क्षुरधार
सजाता वह सौन्दर्य स्वरूप
नयन नासिका श्रवण श्रृंगार

३१

सृष्टि निर्माता धर्म स्वरूप
उपस्थित स्वयं उसी में आप
व्यवस्था उसकी नियति आकट्य
कर रहा संचालन चुप चाप

३२

कौन रोकेगा उसका न्याय
मनुज का कर्त्ता पन अभिमान
नहीं वह रख सकता क्षण एक
प्रश्न का उत्तर यह हनुमान

—— इति ——

लेखक की अन्य पुस्तकें

प्रकाशित

शिव महिमा

किरातार्जुन

सुखई और उनके खयाल

श्मशान

आंजनेय (महाकाव्य)

(प्रकाश्य)

भारतीय संस्कृति और लोक साहित्य (आलोचनात्मक)

भदावर क्षेत्र के नारी लोक गीत

सावित्री – (काव्य)

रत्नावली (काव्य)

राधा शतक (काव्य)

विश्वामित्र नाट्य (काव्द)

आद्या शक्ति (काव्य)

—००—